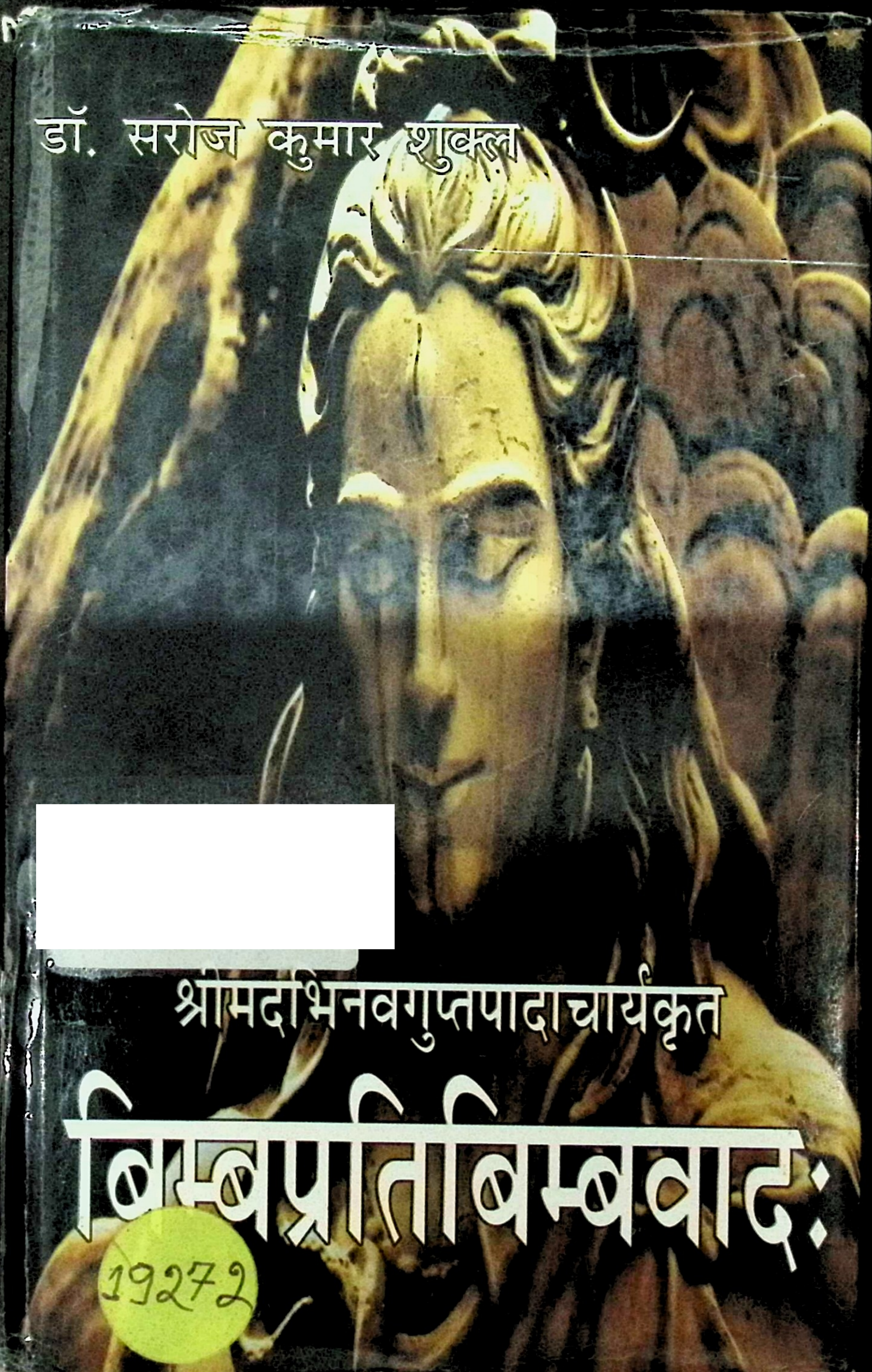
डॉ. सरोज कुमार शुक्ल
श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्यकृत
बिम्बप्रतिबिम्बवादः
19272

शैवागम की आचार्य परम्परा में अभिनवगुप्तपादाचार्यजी का अप्रतिम स्थान है। आचार्य ने काश्मीर शैव दर्शन से सम्बन्धित 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद' सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने तन्त्रालोक ग्रन्थ के तृतीय आह्निक में किया है।

प्रस्तुत पुस्तक अभिनवगुप्तकृत 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद' की 'मातृका' पर आश्रित है, यह पाण्डुलिपि 'भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट' पुणे के हस्तलिखित संग्रहालय से प्राप्त हुई, जिसका सम्पादन मेरे द्वारा किया गया हैं सिद्धान्त के समुचित अवबोधन हेतु लेखक द्वारा भूमिका भाग में शैवागम से सम्बन्धित विभिन्न दार्शनिक तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक के द्वारा आचार्य अभिनवगुप्त तथा उनके काश्मीर शैव सिद्धान्त के विषय में यथा सम्भव यथेष्ठ जानकारी अधिगत हो सकेगी। निश्चित रूपेण उक्त ग्रन्थ अभिनवगुप्तपादाचार्य के प्रकाशित अन्य ग्रन्थों में एक शृंखला के रूप में प्रतिबिम्बित हो सकेगा, यही सम्पादक का एक सार्थक श्रम होगा।

Sahitya Kavya

[illegible]

इस पुस्तक में व्यक्त विंचारं लेखक/सम्पादक के व्यक्तिगत हैं। इस पुस्तक में व्यक्त विचारों से किसी भी प्रकार की होने वाली हानि के लिए शब्द संयोजक, मुद्रक तथा प्रकाशक का कोई भी दायित्व नहीं होगा।

ISBN : 978-93-81615-66-9

प्रकाशक
प्रगतिशील प्रकाशन
एन–3/25, प्रथम तल, मोहन गार्डन, उत्तम नगर,
नई दिल्ली–110059 दूरभाष: 011–25358642 +91–9899665801
ई–मेल–satyampub_2006@yahoo.com

श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्यकृत : बिम्बप्रतिबिम्बवादः

मूल्य : 300.00
प्रथम संस्करण : 2015
© सुरक्षित

भारत में प्रकाशित
'प्रगतिशील प्रकाशन', नई दिल्ली के लिए प्रकाशित। कॉन्वेक्स पब्लिशिंग सोल्यूशन ब्यूरो, नई दिल्ली द्वारा टाईप सेटिंग तथा विशाल कौशिक प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

प्राक्कथन

परम माहेश्वर श्रीमदभिनवगुप्ताचार्य द्वारा लिखित **'बिम्बप्रतिबिम्बवाद'** विषय से सम्बन्धित पाण्डुलिपि **भण्डारकर ओरियण्टयल रिसर्च इंस्टीट्यूट** पुणे के हस्तलिखित सङ्ग्रहालय से प्राप्त हुई है। इस पाण्डुलिपि का सम्पादन अभी तक किसी के द्वारा नहीं किया गया है। 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद' सम्बन्धी सिद्धान्त कश्मीर शैवदर्शन परम्परा में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इसका उल्लेख अभिनवगुप्त ने अपने तन्त्रालोक के तृतीयमाह्निकम् में किया है। इस 'मातृका' के सम्पादन के साथ ही कश्मीर शैवदर्शन से सम्बन्धित विभिन्न तथ्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। अभिनवगुप्त के व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्त्व के निरूपण के साथ ही इस ग्रन्थ में अन्य प्रमुख कश्मीरी आचार्यो के विचारों पर सङ्क्षिप्त प्रकाश डाला गया है। कश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों की भी चर्चा प्रस्तुत ग्रन्थ में उपन्यस्त की गयी है, जिससे 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद' के अवबोधन में किसी भी प्रकार की कठिनाई न हो। शैवागम में शिव को परमतत्त्व के रूप में स्वीकार करते हुए उसके स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है, उसे स्वयं प्रकाश कहा गया है तथा उसी के द्वारा सभी को प्रकाश प्रदान किया जाता है। जिस प्रकार दर्पण आदि में परस्पर व्यावृत्त रूप प्रतिबिम्बित आकार विशेष उस (दर्पण) से अभिन्न होते हुए भी भिन्न जैसे भासते हैं, उसी प्रकार परमेश्वर तथा जगत् की स्थिति है। इस ग्रन्थ के माध्यम से परमेश्वर (शिव) की सत्ता को वर्णित करते हुए कहा गया है कि प्रतिबिम्ब दर्पण आदि से भिन्न स्वतन्त्र रूप से

पृथक् सत्ता को नहीं प्राप्त करता है। इसलिए दर्पण के अतिरिक्त इस प्रतिबिम्ब का कोई पृथक् स्थान नहीं है। इससे यह द्योतित होता है कि यह विश्व संवित् तत्त्व में दर्पण प्रतिबिम्ब न्याय से स्थित है न कि उससे भिन्न बाह्य रूप में, वस्तुसत् है इसलिए उसके प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। इन्हीं विचारों को अभिनवगुप्त द्वारा इस पाण्डुलिपि में व्यक्त किया गया है, जिसका सम्पादन मेरे द्वारा किया गया है। इस सम्पादन सम्बन्धी महनीय कार्य को सम्पूर्णता तक पहुँचाने में मेरे परमादरणीय वैदुष्य से अलङ्कृत श्रद्धेय गुरुप्रवर प्रो0 बृजेश कुमार शुक्ल जी का आशीर्वादात्मक मार्ग-दर्शन रहा है, जिससे यह कार्य पूर्ण हो सका है। मैं परमपूज्य अपने गुरूजी के चरण-कमलों में सादर प्रणाम करते हुए उनके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ जिनकी अनुकम्पा से मुझ जैसा अकिञ्चन इस दुर्बोध विषय को समझ सका तथा उसका सम्पादन कर सका। यह महनीय कार्य गुरुकृपा के बिना सम्भव ही नहीं था। इसके अतिरिक्त मैं उन गुरुजनों के प्रति श्रद्धावनत शिर से आभार प्रकटित करता हूँ जिनकी अनुकम्पा से मैंने मातृका के सम्पादन का प्रयास किया। इसके अनन्तर सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली के प्रकाशन प्रभारी श्री आर0डी0 पाण्डेय जी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इसके प्रकाशन में अथक् परिश्रम किया। आशा करता हूँ कि यह ग्रन्थ कश्मीर शैव-दर्शन के अध्ययन के प्रति रुचि रखने वाले सुधीजनों के लिए उपादेय सिद्ध होगा।

दुषामनुचरः
डॉ. सरोज कुमार शुक्ल
अतिथि-प्रवक्ता
संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

विषय–सूची

भूमिका
बिम्बप्रतिबिम्बवाद के प्रणेता श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्य.................7
आचार्य अभिनवगुप्त का कर्तृत्त्व 17
अभिनवगुप्त के अन्य ग्रन्थ.................26
कश्मीर शैवदर्शन 28
शैवदर्शन का कश्मीर से सम्बन्ध.................30
कश्मीर शैवदर्शन की प्रमुख शाखाएँ 32
–पाशुपत दर्शन
–शैव सिद्धान्त दर्शन
–वीर शैव सिद्धान्त दर्शन
–रसेश्वर दर्शन
–व्याकरण दर्शन
–प्रत्यभिज्ञा दर्शन
–क्रम दर्शन
–कौल दर्शन
कश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख आचार्य.................43
–आचार्य वसुगुप्त
–आचार्य सोमानन्द
–उत्पलदेव
–अभिनवगुप्त
–भट्ट कल्लट
–भट्ट भास्कर
–क्षेमराज
–जयरथ
–रामकण्ठ
–श्रीकण्ठ सूरि
–नारायण कण्ठ
–योगराजकण्ठ

–गोरक्ष (महेश्वरानन्द)
–वरदराज (कृष्णदास)
शैवदर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का निरूपण 49
–परमसत्ता
–स्वातन्त्रयवाद
–प्रतिबिम्ब और आभास
–सामरस्य सिद्धान्त
–परिपूर्णता का सिद्धान्त
–स्पन्द सिद्धान्त
शैवागम में बिम्बप्रतिबिम्बवाद 65
सम्पादन में प्रयुक्त 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद' की मातृका का परिचय..72
अभिनवगुप्तकृत 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद'–सानुवाद–सम्पादन..............74
श्लोकानुक्रमणी..86

बिम्बप्रतिबिम्बवाद के प्रणेता श्रीमदभिनवगुप्ताचार्य

परम माहेश्वर श्री अभिनवगुप्ताचार्य कश्मीर के शैव सिद्धान्त के आचार्यों में सर्वाधिक वैदुष्य और प्रतिभा से मण्डित लोकोत्तर पुरुष थे। शैवदर्शन तथा आगम को अपनी प्रतिभा से अलङ्कृत करने वाले इस दिव्य पुरुष ने अपने अद्‌भुत चिन्तन से अपने गुरुजनों को भी पश्चाद्‌गामी बना दिया है। मूल रूप से ये दार्शनिक थे परन्तु तन्त्रागम और साहित्य पर भी इनका असाधारण अधिकार है।

अभिनव गुप्त कश्मीरी ब्राह्मण हैं किन्तु उनके पूर्वज सदा कश्मीर में रहने वाले नहीं थे। अभिनव गुप्त के जन्म से लगभग 200 वर्ष पूर्व उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध नगर कन्नौज में रहते थे जो उन दिनों एक अत्यन्त समृद्ध एवं शक्तिशाली साम्राज्य था। उस समय कन्नौज साम्राज्य के अधिपति यशोवर्मा थे। कश्मीर में तत्कालीन राजा ललितादित्य राज्य कर रहे थे। किसी कारण वश कश्मीर राज्य ने कन्नौज पर आक्रमण कर दिया और उस युद्ध में यशोवर्मा पराजित हो गये। उस समय यशोवर्मा के यहाँ अत्रिगुप्त नामक एक विद्वान् थे। कश्मीर के राजा सदा ही विद्वानों का आदर करने वाले रहे हैं। इसलिए राजा ललितादित्य अत्रिगुप्त को अत्यन्त सम्मान के साथ कश्मीर ले गये। उनके लिए उत्तम गृह का निर्माण करके तथा उन्हें प्रभूत सम्पत्ति प्रदान कर उन्हें कश्मीर में रखा। इन्हीं अत्रिगुप्त के वंश में अभिनव गुप्त उत्पन्न हुए।

आचार्य ने इसका उल्लेख तन्त्रालोक में किया है–

निःशेषशास्त्रसदनं किल मध्यदेश–
स्तस्मिन्नजायत गुणाभ्यधिको द्विजन्मा।
कोऽयत्रिगुप्तकोऽप्यत्रिगुप्तइतिनामनिरुक्तगोत्रः
शास्त्राब्धिचर्वणकलोद्यदगस्त्यगोत्र।।
तमथ ललितादित्यो राजा निजं पुरमानयत्
प्रणयरभसात् कश्मीराख्यं हिमालयमूर्धगम्
अधिवसति यद्गौरीकान्तः करैर्विजयादिभि–
र्युगपदखिलं भोगासारं रसात् परिचर्चितुम्।।[1]

अभिनव गुप्त के पिता का नाम चुखुलक नरसिंह गुप्त था माता का नाम विमला था।

यः पूर्णानन्दविश्रान्तसर्वशास्त्रार्थपारगः।
सश्रीचुखुलकोदिश्यादिष्टंमेगुरुरुत्तमः।।[2]

ईश्वरप्रत्याभिज्ञा के सम्पादक पं0 मधुसूदन कौल ने अभिनवगुप्त के पिता का नाम लक्ष्मण गुप्त बताया है किन्तु यह कथन असत्य है क्योंकि अभिनव गुप्त ने तन्त्रालोक में अपने पिता का नाम नरसिंह गुप्त लिखा है नरसिंह गुप्त ही लोगो में चुखुलक के नाम से प्रसिद्ध थे। लक्ष्मण गुप्त तो प्रत्यभिज्ञा शास्त्र में अभिनव गुप्त के गुरु थे। इनके माता–पिता का उल्लेख तन्त्रालोक विवेक में किया गया है।

अस्य हि गन्थकृतः श्री नरसिंहगुप्तविमलाख्यौ पितरौइति गुखः।[3]

इनके जन्म के कारण पिता तथा माता यह सोचकर अत्यन्त हर्षित हुए कि यह पुत्र हमारे कुल मे परम माहेश्वर होगा और हमको भवसागर से पार करायेगा–

नन्दन्ति पितरस्तस्य नन्दन्ति च पितामहः।
अद्य माहेश्वरो जातः सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति।।[4]

अभिनवगुप्त का जन्म काल 950 ई0 और 960 ई0 के मध्य माना जाता है और विविध विद्वानों ने व्याकरण, द्वैताद्वैत, तन्त्र, द्वैत, शैवदर्शन, ब्रह्मविद्या, त्रिकदर्शन, ध्वनिशास्त्र और नाट्यशास्त्र आदि विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् सम्भवत: 985 ई0 से पूर्व ही उन्होंने साहित्य रचना प्रारम्भ कर दी थी। डॉ0 यदुवंशी ने अपने शैवमत ग्रन्थ में और जयशटर प्रसाद जी ने काव्य और कला तथा अन्य निबन्धों में अभिनव गुप्त को उत्पल का शिष्य बताया है[5] किन्तु ये मत असङ्गत है क्योंकि अभिनवगुप्त उत्पल के शिष्य न होकर उनके प्रशिष्य थे–

उवाचोत्पलदेवश्च श्रीमानस्मद्गुरोर्गुरु:।[6]

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी की भूमिका में अभिनव गुप्त का जो काल वर्णित किया गया है उसके अनुसार इस ग्रन्थ का समय 1012 ई0 निर्धारित किया जाता है। अत: उनके क्रमस्तोत्र की रचना 990 में, भैरव स्तोत्र की रचना 9.2 में तथा विवृतिविमर्शिनी की रचना 1014ई0 में की गयी है।[7]

इनके अनुसार 10वीं शताब्दी ही इनका आविर्भाव काल माना जाता है। इनके वंश के प्रारम्भिक प्रधान पुरुष अत्रिगुप्त थे यह इनके वचन से ज्ञात होता है–

इति न वतितमेऽस्मिन्वत्सरेऽन्त्ये युगांशे।
तिथिशशिजलधिस्थे मार्गशीर्षावसाने।।[8]

आचार्य अभिनव गुप्त आजीवन ब्रह्मचारी रहे। श्री मधुसूदन कौल का मत है कि आजीवन ब्रह्मचारी रहने के कारण ही ये गार्हस्थ्य की चिन्ताओं से मुक्त रहे तथा जीवन की सफलता का भी यही एक महान् कारण रहा। अभिनव गुप्त की जन्मस्थली और तपोभूमि निश्चित रूप से कश्मीर ही रही होगी। शैवदर्शन का पूर्ण विकास

यहीं पर हुआ। प्रभु माहेश्वर की भक्ति के लिए इससे उपयुक्त स्थान दूसरा हो भी नहीं सकता है। हिमाच्छादित शैलशिखर, वृक्ष लताओं से विराजित सघन उपत्यकायें, कल-कल निनाद से कान्तार को गुञ्जरित करते निर्झर, योगाभ्यास के लिए एकान्त, शान्त वनान्त यही सब कुछ तो भक्ति के उद्दीपक कारक होते हैं। कश्मीर की भूमि इन सबसे सम्पन्न है। इसी भूमि ने अभिनव के भक्ति भासित अन्तःकरण को प्रचुरता से आवर्जित किया होगा। इनका गृह भी श्रीनगर में वितस्ता के तट पर था ललितादित्य के वैभव को वर्णित करते हुए कहा गया है-

तस्मिन् कुबेरपुरचारिसितांशुमौलि-
सांमुख्यदर्शनविरुढपवित्रभावे।
वैतस्तरोधसि निवासममुष्य चक्रे
राजा द्विजस्य परिकल्पितभूरिसंपत्।।[9]

अभिनवगुप्त के छोटे भाई का नाम मनोरथ गुप्त था। इनके चाचा के पाँच पुत्र थे-क्षेमगुप्त, उत्पलगुप्त, अभिनव गुप्त, चक्रगुप्त और पद्मगुप्त। इनका यह चचेरा भाई अभिनव ही तन्त्रवटधानिका का कर्त्ता माना जाता है। परम माहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त अपनी साधना के बल पर परम शिव के साथ अद्वय भाव को प्राप्त कर चुके थे। उनकी आँखें आनन्दातिरेक से सदैव उल्लसित रहती थीं। मस्तक पर भस्म रचित तिलक शोभा पाता था। रुद्राक्ष मालिका कर्ण प्रदेश में विराजित हुआ करती थी। लम्बे केश और लम्बी दाढ़ी मुखमण्डल को घेरे रहते थे।

आनन्दान्दोलिताधः स्फुटकृततिलको भस्मना भालमध्ये,
रुद्राधौल्यासि कर्णकलित कचभरो मालया लम्बकूर्चः।।[10]

अभिनव गुप्त के विषय में इस विपुल परिचय को उपन्यस्त

करने का यही उद्देश्य है कि त्रिक दर्शन के सर्वाङ्गीण संस्थापक और परितोषक इस महान् अर्चनीय देवपुरुष के विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति ना रहे।

अभिनव गुप्त के नाम के साथ जुड़े हुए शब्द के श्रवण से यह भ्रान्ति होती है कि अभिनव गुप्त विशुद्ध ब्राह्मण थे। इनके वंश में उत्पन्न पुरुषों के साथ जो गुप्त शब्द लगा हुआ है वह वस्तुतः 'गोप्ता' का परिवर्तित रूप है। प्राचीन भारत में शत ग्रामों के प्रकाशक को 'गोप्ता' पद से अभिहित किया जाता था। यह 'गोप्ता' पद प्रशासन की योग्यता के आधार पर राजा की ओर से प्रदान किया जाता था, चाहे वह ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य क्यों न हो। अभिनव गुप्त के पूर्वज अत्रिगुप्त था जिन्हें 'गोप्ता' पद दिया गया था उसके वंश में उत्पन्न हुए सभी पुरुषों के साथ 'गोप्ता' यह उपनाम सदा के लिए जुड़ गया। यह 'गोप्ता' उपनाम ही आगे चलकर विकृति को प्राप्त होकर गुप्त हो गया। अत्रिगुप्त के वंश में ही अभिनव गुप्त हुए वे पूर्णतः उत्कृष्ट ब्राह्मण थे। इस प्रकार के 'गुप्त' उपनाम से अभिहित होने वाले अन्य विद्वान् भी ब्राह्मण हुए हैं जैसे चाणक्य को विष्णुगुप्त भी कहा जाता है। समुद्रगुप्त का पिता चन्द्रगुप्त ब्राह्मण था। ब्रह्मगुप्त नाम का एक विद्वान् ब्राह्मण गणित शास्त्र का गुरु हो चुका था। अतः अभिनव गुप्त के पूर्वज भी विशुद्ध ब्राह्मण थे।

अभिनव गुप्त एक शैव योगी थे। आज भी उन्हें कश्मीर शैवदर्शन का शैवाचार्य समझा जाता है। अभिनव गुप्त ने अनेक महनीय सर्वशास्त्र निष्णात गुरुओं से विभिन्न विद्यायें प्राप्त की थीं। वस्तुतः आचार्य निखिल विद्याओं के अगाध सागर थे। इनके गुरुओं के विषय में ऐसा वर्णन प्राप्त होता है कि इनके गुरु उत्पलदेव लक्ष्मणगुप्त तथा शम्भुनाथ थे–

श्रीसोमानन्दबोधश्रीमदुत्पलविनिःसृताः।
जयन्ति संविदामोदसन्दर्भा दिक्प्रसर्पिणः।।
तदास्वादभरावेशबृंहितां मतिषट्पदीम्।
गुरोर्लक्ष्मणगुप्तस्य नादसम्मोहिनीं नुमः।।[11]

अभिनवगुप्त ने अर्ध त्र्यम्बक शैवदर्शन, आमर्दक शैवशास्त्र, कालीनय, कोलिक विधि, तुर्याख्या सन्तति, त्रिक प्रक्रिया, त्र्यम्बकीय शैवशास्त्र, प्रत्यभिज्ञाशास्त्र, मतङ्गशास्त्र, श्रीनाथ शैव, भगवद्गीता, व्याकरण, अलङ्कारशास्त्र, काव्यशास्त्र आदि विविध विद्यायें उन्होंने अर्जित की और उन पर विपुल ग्रन्थों का निर्माण भी किया। इनके गुरुओं की सङ्ख्या सात स्वीकार की गयी है। किससे कौन सी शिक्षा इन्होंने प्राप्त की इसका सङ्क्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

शम्भुनाथ–अभिनव गुप्त ने अर्ध त्र्यम्बक शैव विद्या आचार्य शम्भुनाथ से प्राप्त की थी। शम्भुनाथ जालन्धर पीठ के पीठाधिप थे, जो कांगडा में स्थित है। कौल विद्या और त्रिक प्रक्रिया के सिद्धान्त पद्य और साधना पद्य के ये परम रहस्यवेत्ता थे। अभिनव ने अपनी समस्त शटाओं का हृदयग्राही समाधान इन्हीं से प्राप्त किया था–

तुर्याख्यसंततिमहोदधिपूर्णचन्द्रः
श्री सोमतः सकलवित्किल शंभुनाथः।[12]

ऐसा प्रतीत होता है कि अभिनव गुप्त ने अनेक गुरुओं से विद्या प्राप्त की थी किन्तु सर्वाधिक सम्मान्य गुरु शम्भुनाथ ही थे–

जयताज्जगदुद्धृतिक्षमोऽसौ, भगवत्या सह शम्भुनाथ एकः।
यदुदीरितशासनांशुभिर्मे प्रकटोऽयं गहनोऽयं शास्त्रमार्गः।।[13]

त्रिकदर्शन के गूढ़ रहस्य उन्होंने शम्भुनाथ से ही प्राप्त किये थे तन्त्रालोक में उन्होंने गुरु शम्भुनाथ को बड़े आदर से सम्बोधित किया है। इन्हें सकल शास्त्रों का महानिधान कहा गया है-

इत्यागमं सकलशास्त्रमहानिधाना-
च्छ्रीशम्भुनाथवदनादधिगम्य सम्यक्।
शास्त्रे रहस्यरससन्ततिसुन्दरेऽस्मिन्
गम्भीरवाचि रचिता विवृत्तिर्मयेयम्।।[14]

इससे स्पष्ट होता है कि शम्भुनाथ इनके परम आराध्य गुरु थे।

श्री वामनाथ-आचार्य अभिनव गुप्त ने श्री वामनाथ से आमर्दक शैव विद्या प्राप्त की थी-

आनन्दसन्ततिमहार्णवकर्णधार:
सद्दैशिकैरकवरात्मजवामनाथ:।[15]

आचार्य अभिनवगुप्त के श्री मुख से उच्चरित वचन के अनुसार श्री वामनाथ के पिता श्री एरकनाथ थे। श्री वामनाथ का स्मरण भी आचार्य के द्वारा आदर के साथ किया गया है।

उद्भट-श्री उद्भट नामक आचार्य कालीनय के रहस्यवेत्ता थे इनके सन्दर्भ में आचार्य अभिनव गुप्त ने कहा है-

श्रीमदुज्जतोद्भटादिनानां गुरु परिपाटीसन्ततिर्यत्प्रदसादित महिमाभिरस्माभिरेतत्प्रदर्शितम्।[16]

आचार्य अभिनव गुप्त ने श्री उद्भट गुरु से कालीनय की विद्या ग्रहीत की थी।

अनिरुद्ध-श्री अनिरुद्ध भी अभिनव गुप्त के गुरु थे। आचार्य ने इनको मतङ्गशास्त्र का व्याख्याता कहा है-

तस्मात्कर्मेन्द्रियाण्याहुस्त्वग्वद्व्याप्तृणिमुख्यतः।
तत्स्थाने वृतिमन्तीति मतङ्गेगुरुवो मम।।[17]

अनिरुद्ध मतङ्ग शास्त्र के परम ज्ञाता थे।

लक्ष्मण गुप्त–त्र्यम्बकीय शैव प्रत्यभिज्ञा शास्त्र तथा त्रिक प्रक्रिया की शिक्षा आचार्य ने परम विद्वान् लक्ष्मण गुप्त से पायी थी–

तत्प्रशिष्यः करोम्येतां तत्सूत्रविवृतिं लघुम्
वुद्ध्वाभिनवगुप्तोऽहं श्रीमल्लक्ष्मणगुप्ततः।।[18]

त्रिक प्रक्रिया की शिक्षा में श्री लक्ष्मण गुप्त परम निष्णात थे। इसके साथ ही प्रत्यभिज्ञा के ज्ञान से ये मण्डित थे इन्हीं से अभिनव ने इन विषयों के सन्दर्भ में परम ज्ञान प्राप्त किया।

भट्टेन्दुराज–श्री नाथीण शैव विद्या का अध्ययन आचार्य अभिनव गुप्त ने इन्हीं से किया था–

श्रीनाथसंततिमहाम्बरघार्मकान्तिः
श्रीभूतिराजतनयः स्वपितृप्रसादः।[19]

इससे यह स्पष्ट होता है कि भट्टेन्दुराज नाथीण शैव विद्या के परम ज्ञाता थे।

नरसिंह–श्री नरसिंह गुप्त आचार्य अभिनव गुप्त के पिता थे अपने पिता से आचार्य ने व्याकरण, न्याय और साहित्य की शिक्षा प्राप्त की थी–

पित्रा स शब्दगहने कृतसंप्रवेश–
स्तर्कार्णवोर्मिपृषतामलपूतचित्तः।
साहित्यसान्द्ररसभोगपरोमहेश–
भक्त्या स्वयंग्रहणदुर्मदया गृहीतः।।[20]

अभिनव ने एक तरफ अपने पिता से वात्सल्य पूर्ण स्नेह प्राप्त किया तो दूसरी तरफ उन्हें अपने गुरु के रूप में स्वीकार करते हुए उनसे व्याकरण सम्बन्धी विषय के सन्दर्भ में ज्ञान प्राप्त किया।

चन्द्रशर्मा–श्री चन्द्रशर्मा से भी सम्भवत: विभिन्न शैव रहस्य अभिनव गुप्त ने प्राप्त किये थे। उन्होंने बड़े आदर से उन्हें स्मरण किया है–

श्रीचन्द्रशर्मभवभक्तिविलासयोगा–
नन्दाभिनन्दशिवशक्तिविचित्रनाथा:।[21]

शैव रहस्य सम्बन्धी गूढ़ तथ्यों का ज्ञान आचार्य ने इन्हीं के श्री चरणों में बैठकर प्राप्त किया था।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य गुरुओं का भी नाम निर्देश अभिनवगुप्त ने तन्त्रालोक में किया है, जैसे–भूतिराज, महेश्वर, वामनदत्ताचार्य, धर्मशिव, भास्कर, उत्पलदेव आदि। इस सन्दर्भ में तन्त्रालोक में कहा गया है–

अन्येऽपि धर्मशिववामनकोद्‌भटश्री
भूतेशभास्करमुखप्रमुखा महान्त:।[22]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अभिनव गुप्त एक बहुत बड़े शैव योगी थे, आज भी उन्हें कश्मीर शैवदर्शन का सर्वोत्तम अधिकारी शैवाचार्य समझा जाता है। निश्चय ही अभिनवगुप्त के हाथों से दर्शन को पूर्णता प्राप्त हुई।

तन्त्रालोक और तन्त्रसार में आचार्य अभिनव गुप्त ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि अपने शास्त्रज्ञान को परिपूर्ण बनाने के लिए एक से अधिक गुरुओं की शरण लेनी चाहिए तथा अनेक गुरुओं का शिष्य बनने में शङ्का नहीं करनी चाहिए। इस सन्दर्भ में उन्होंने कहा है–

आमोदार्थी यथा भृङ्गः पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत्।
विज्ञानार्थी तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत्।।[23]

अतः उन्होंने शास्त्रों और शासन पद्धतियों के रहस्यों का ज्ञान अनेक गुरुओं से प्राप्त किया।

परन्तु जिन गुरुप्रवर के उपदेशों से उन्होंने शास्त्र की अतीव रहस्य भूत ग्रन्थियों को खुलवाकर उनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त किया था और जिनके प्रति उन्होंने विशेष आभार प्रकट किया है–उनमें शम्भुनाथ जी का नाम आता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आचार्य अभिनव गुप्त ने विभिन्न विषयों के ज्ञान प्राप्ति के लिए अनेक गुरुओं की शरण में गये तथा तत्सम्बन्धी विषय के ज्ञान को प्राप्त किया। आचार्य अभिनव गुप्त आजीवन ब्रह्मचारी रहे हैं। इन्होंने जीवन भर ब्रह्मचर्य के कठोर व्रत का पालन किया। उनके जीवन का पटाक्षेप भी उनकी इस जीवनचर्या के अनुरूप ही सुन्दर रूप में हुआ है। कश्मीर में श्रीनगर तथा गुलमर्ग के बीच में 'मगम' नाम का एक स्थान है। उस स्थान से पाँच मील की दूरी पर 'भैरव गुफा' के नाम से एक प्रसिद्ध गुफा है। उसके पास ही भैरव नाम की एक छोटी सी नदी बहती है। इसके पास एक छोटा सा गाँव है वह भी 'भैरव गाँव' के नाम से प्रसिद्ध है। अभिनव गुप्त ने अपने जीवन का अन्तिम भाग इसी पवित्र वातावरण में व्यतीत किया। अन्तिम समय समीप आने पर वे स्वयं इस गुफा के भीतर प्रविष्ट हो गये और फिर कभी वापस नहीं लौटे।

आचार्य अभिनव गुप्त का अपार वैदुष्य इनके ग्रन्थों में परिलक्षित होता है।

आचार्य अभिनव गुप्त का कर्तृत्व

आचार्य अभिनवगुप्त प्रकाण्ड विद्वान् थे। उनके द्वारा कश्मीर शैवागम तथा शैवदर्शन से सम्बन्धित विविध ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। दर्शन शास्त्र के अतिरिक्त आचार्य का साहित्य शास्त्र पर भी पूर्ण अधिकार था जिसका परिचय उन्होंने नाट्यशास्त्र पर 'अभिनवभारती' तथा ध्वन्यालोक ग्रन्थ पर 'लोचनटीका' को लिखकर दिया है। इनके ग्रन्थों में सबसे विशाल ग्रन्थ तन्त्रालोक है तथा सबसे छोटा भैरव स्तोत्र है। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं जिनका उल्लेख सूची पत्र में तो मिलता है लेकिन ग्रन्थ नहीं मिलते हैं। सङ्क्षिप्त में इनके ग्रन्थों के विषय में इस प्रकार विचार किया जा सकता है-

तन्त्रालोक-आचार्य महोदय ने अपने अनेक प्रिय शिष्यों की प्रार्थना से अनेक शैवतन्त्र ग्रन्थों में से अत्यन्त उपयोगी सार को निकालकर उसका सङ्ग्रह किया, फिर उसको समुचित क्रम में रखकर इस अद्भुत ग्रन्थ रत्न 'तन्त्रालोक' का निर्माण किया। इसमें त्रिक दर्शन के साधना पक्ष का विस्तार से विवेचन किया गया है। यह विशाल ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है। इस ग्रन्थ का आरम्भ करते हुए उन्होंने सबसे पहले बन्ध एवं मोक्ष का निरूपण करते समय अन्य शास्त्रों द्वारा उपदिष्ट मोक्ष सिद्धान्त की समीक्षा करते हुए उस प्रकार के मोक्ष को 'कुतश्चिन्मुक्तिः'[24] अर्थात् आंशिक मुक्ति के रूप में सिद्ध करके अन्ततोगत्वा स्वात्मस्वरूप की प्रत्यभिज्ञा से प्राप्त होने वाले मोक्ष को सर्वथा मुक्ति के रूप में सिद्ध किया है।

तदनन्तर उस परिपूर्ण मुक्ति के उपायों में से पहले तो शाम्भवोपाय के परिपूर्ण पुष्टि से हाथ में आने वाले अनुपाय योग के स्वरूप और विधान का निरूपण दूसरे आह्निक में किया गया है। अनुपाय उनकी दृष्टि में स्वतः सिद्ध प्रातिभ स्वरूप साक्षात्कार के अभ्यास को कहते हैं यह प्रायः गुरु कृपा मात्र से होता है। कभी-कभी किसी को उपायों का थोड़ा सा सहारा भी लेना पड़ता है। ये उपाय यहाँ शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय तथा आणवोपाय के नाम से वर्णित हैं। शाम्भवोपाय में प्रधानता कुल प्रक्रिया का और शाक्तोपाय में क्रम प्रक्रिया का, द्वादशकाली आदि विषयों का समावेश है। आणवोपाय में सूक्ष्म और स्थूल योग प्रक्रिया का समावेश है। इस ग्रन्थ में षडध्ववविवेचन, शक्तिपात, वामपूजा, दीक्षा, मुद्रा, मण्डल, तान्त्रिक और कौलिक याज्ञविधि जैसे अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर विस्तार से अद्‌भुत प्रकाश डाला गया है।

त्रिक सम्प्रदाय में तन्त्रालोक की पहचान एक सङ्ग्रह ग्रन्थ, एक प्रक्रिया या पद्धति ग्रन्थ, एक शास्त्र और एक स्तुति ग्रन्थ के रूप में है जिसका उद्देश्य भैरव रूप की प्राप्ति, चतुर्विध ज्ञान की स्थापना, तन्त्र विज्ञान का सरल ज्ञान, त्रिक परम्परा का पुनःस्थापन है। अनुष्टुप् के साथ-साथ आर्या, वसन्ततिलका मालिनी आदि छन्दों में 5844) पद्यों को 37 आह्निकों में क्रमशः - विज्ञान भेद, अनुपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय, आणवोपाय, कालोपाय, चक्रोदय, देशाध्वन्, तत्त्वाध्वम्, तत्त्वभेदन, कलाद्यध्वन्, अध्वोपयोग, पौत्रिक विधि, सङ्क्षिप्त दीक्षा, सद्योनिर्माण दीक्षा, तुलादीक्षा, परोक्षीदीक्षा लिङ्गोपचार, अभिषेक विधि, अन्त्ययाग, श्राद्ध क्लृप्ति, शेषवृत्ति, लिङ्गाचार्या, पर्वपवित्रादि, रहस्य चर्चा, मन्त्रोघ, मण्डल-मुद्रिकादिविधि, एकीकार, स्वरूप प्रवेश, शास्त्रमेलन, आयाति, उपादेयभाव इन विषयों का विस्तृत विवेचन उपस्थित

किया है। आचार्य अभिनव गुप्त ने तन्त्रालोक में कहा है कि इस ग्रन्थ में वर्णित विषयों का ज्ञान हमें भगवान् सङ्कर के चरण कमलों में चिन्तन से हुआ है-

अभिनवगुप्तस्यकृतिःसेयंयस्योदितागुरुभिराख्या।
त्रिनयनचरणसरोरुहचिन्तनलब्धप्रसिद्धिरिति।।[25]

अन्यत्र भी इन्होंने स्पष्ट किया है कि शिष्यों एवं ब्रह्मचारियों के द्वारा अनेक बार प्रार्थना किये जाने के कारण स्पष्ट एवं परिपूर्ण अर्थ वाली इस प्रक्रिया की रचना मेरे द्वारा की गयी है-

इत्यहं बहुशः सद्भिः शिष्यसब्रह्मचारिभिः।
अर्थितो रचये स्पष्टां पूर्णार्थां प्रक्रियामिमाम्।।[26]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आचार्य अभिनव गुप्त द्वारा रचित तन्त्रालोक त्रिकदर्शन प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी–आचार्य अभिनव गुप्त ने कश्मीर शैवदर्शन के सिद्धान्त पक्ष के सर्वोत्तम ग्रन्थ की अर्थात् ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी नामक टीका की रचना करते हुए 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञा' ग्रन्थ को अतीव विद्वत् प्रिय बना दिया जो स्थान व्याकरण में पातञ्जल महाभाष्य का है तथा अद्वैत वेदान्त में ब्रह्मसूत्र के शाङ्करभाष्य का है वही स्थान कश्मीर शैवदर्शन में 'ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' का है। इससे आचार्य महोदय के विषय में कहा जा सकता है कि वे उस युग में प्रचलित समस्त शास्त्रों के मर्मों को भली-भाँति जानते थे। इस विमर्शिनी नामक ग्रन्थ के रस का स्वाद यदि एक बार भी आ जाय तो वह जीवन भर के लिए लगा ही रहता है। यद्यपि ग्रन्थ विविध तर्कों से भरा है, रुक्ष तर्क भी इस ग्रन्थ में प्रविष्ट होकर मधुर बन गये हैं। आध्यात्मिक दर्शन विद्या की कोई भी ऐसी मुख्य पहेली नहीं है जिसे इस विमर्शिनी

ने सुलझाकर न रखा हो। इस ग्रन्थ के स्वाद के आ जाने अन्य ग्रन्थों के अभ्यास में रुचि मन्द हो जाती है। परन्तु यह ग्र भली-भाँति तभी समझ में आता है जब भारतीय दर्शन शास्त्र अन्य विषयों के मुख्य सिद्धान्तों का तथा संस्कृत व्याकरण द का ज्ञान पर्याप्त मात्रा में प्राप्त किया जा चुका हो। अतः यह क जा सकता है कि उत्पलदेव के द्वारा विरचित 190 कारिकाओं अभिनव गुप्त जी ने विमर्शिनी टीका लिखी जो चार अधिका में विभाजित है-(1) **ज्ञानाधिकार** में-उपोद्घात, पूर्वपक्षविवृ परदर्शनानुपपत्ति, स्मृतिशक्ति निरूपण, ज्ञानशक्ति निरूपण, अपो शक्ति निरूपण, एकाश्रनिरूपण, माहेश्वर्य निरूपण, (2) **क्रियाधिका** में-क्रियाशक्ति निरूपण, भेदाभेद विमर्श मानतत्फलमेय निरूप कार्यकारणत्व निरूपण, (3) **आगमाधिकार** में-तत्त्व निरूपण औ प्रमातृतत्त्व निरूपण, (4) **तत्त्वार्थ-सङ्ग्रहाधिकार** में-तत्त्वा निरूपण गुरुपर्वक्रम निरूपण का स्पष्ट प्रतिपादन है। आचा अभिनव गुप्त ने ईश्वर प्रत्यभिज्ञा पर जो विमर्शिनी लिखी थी उस विमर्शिनी टीका पर पुनः उन्होंने विवृत्ति विमर्शिनी लिखी।

मालिनीविजयवार्तिक-आचार्य अभिनव गुप्त ने मालिनी तन्त्र के पूर्व भाग को लेकर एक सुविशाल वार्तिक ग्रन्थ का निर्माण किया। यह ग्रन्थ मालिनी विजयवार्तिक कहलाता है।[27] जिस प इन आचार्य के द्वारा वार्तिक लिखी गयी वह श्री मालिनी विजयोत्तर तन्त्रम् 23 अधिकारों में 1817 कारिकाओं में निबद्ध है। यह ग्रन्थ कश्मीर त्रिक दर्शन के शैव योग के पक्ष का प्रतिपादन करता है। इस ग्रन्थ के रचनाकार जो कि अज्ञात हैं उसने इसका आविर्भाव दैवी माना है। इस तन्त्र का प्रारम्भिक नाम सिद्धयोगीश्वर तन्त्र था जिसमें 9 करोड़ कारिकायें थीं जो अभेद और भेदाभेद तीनों दर्शनों की व्याख्या करती थीं तत्पश्चात् इसका सङ्क्षिप्तीकरण

होकर इसका नाम मालिनी विजय हुआ। समयानुसार इसमें 12000 कारिकायें शेष रह गयीं। श्रीमालिनीविजयवार्तिकम् में दो काण्ड है जिनमें से प्रथम काण्ड में 1135 कारिकायें और द्वितीय काण्ड में 335 कारिकायें है-जिन्हें अभिनवगुप्त ने अपने दो शिष्यों-कर्ण और मन्द के लिए श्री मालिनी विजयोत्तर तन्त्र की व्याख्या करने के लिए लिखी है, जो कि पूर्वाम्नाय (कश्मीर शैवाद्वैत) पर श्रेष्ठतम ग्रन्थों में एक है जिसके प्रथम काण्ड में श्री मालिनीविजयोत्तर तन्त्र के प्रथम 17 अधिकारों के विषय को स्पष्ट किया गया जबकि द्वितीय काण्ड में 18 से 23 तक के अधिकारों के विषय का विवेचन किया गया है। इस ग्रन्थ में कश्मीर शैवदर्शन के अनेक सिद्धान्तों के रहस्यात्मक स्वरूप को स्फुट किया गया है तथा अनेक रहस्यात्मक साधनाओं से सम्बद्ध विषयों पर प्रकाश डाला गया है। परन्तु उसके अध्ययन के विषय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसके ऊपर कोई वृत्ति या टीका नहीं मिल रही है। दूसरी कठिनाई यह है कि कई एक पाण्डुलिपियों को आधार बनाकर उसका जो वैदुष्य पूर्ण सम्पादन होना चाहिए वह नहीं हो पाया। अतएव यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत वार्तिक आगमशास्त्र का दीप स्तम्भ है।

परात्रिंशिकाविवरण-पाण्डुलिपियों के लेखकों के प्रमाद से तथा सम्पादकों की असावधानी के कारण इसका प्रकाशन 'परात्रिंशिका' इस नाम से हुआ है-इसका वास्तविक नाम 'परात्रींशिकाविवरण'[28] है। त्रिंशिका ऐसा कहा जाना सर्वथा असङ्गत है। भैरव-भैरवी का 30 पद्यों में निबद्ध संवाद पर अभिनवगुप्त की 'तत्त्वविवेक' टीका है जिसमें त्रिक शासनान्तर्गत भक्ति, कर्म और ज्ञान तीन मार्गों का प्रतिपादन है। देवी द्वारा कौलिक सिद्धि और खेचरी विद्या के प्रश्न के प्रत्युत्तर में शिव 'अ' से 'ह' तक मातृका के माध्यम से स्पष्टीकरण देते हैं। इस

ग्रन्थ के विवरण में आचार्य अभिनवगुप्त ने त्रिक साधना के अनेक रहस्यात्मक साधना प्रकारों पर प्रकाश डाला है। विशेष करके शाम्भवोपाय की मातृकोपासना और मालिनी की उपासना के रहस्यों पर। परन्तु उन्होंने इस पर प्रकाश भी रहस्यात्मक रूप में इस तरह ही डाला है कि उसका क्रियात्मक उपयोग वही कर सकता है जिस पर भगवान् शिव ने अनुग्रह शक्तिपात किया हो और जिसे तदनुसार सद्गुरु से रहस्य दीक्षा प्राप्त हो चुकी हो। इस सुविशाल टीका ग्रन्थ में मातृका प्रक्रिया में वर्णो और तत्त्वों को उसी क्रम में लिया गया है जिस क्रम में वे लोक व्यवहार में और दर्शन शास्त्रों में प्रसिद्ध हैं, परन्तु ध्यान देने योग्य यह तथ्य है कि इस जगत् में समस्त तत्त्व परस्पर ओतप्रोत भाव से परस्पर मिले-जुले ही रहते हैं। पृथक्-पृथक् क्रमरुपतया ठहरे हुए कहीं भी मिलते नहीं। अतः इन सभी का स्वात्मरूपतया साक्षात्कार सुगमता से तभी हो सकता है जब इन्हें भी मिले-जुले रूप में ही आत्मरूपतया देखने का अभ्यास किया जाय। इसी प्रयोजन से मालिनी में सभी वर्ण और उनसे अभिव्यक्त होने वाले तत्व मिले-जुले रूप में लिये जाते हैं। आचार्य ने यह कहा है कि ऐसी रहस्यात्मक साधनाओं को लेकर के अनेक दम्भी बगुला भगत मूर्ख जनता को फुसलाकर उन्हें वश में करते हुए अपना कार्य सिद्ध करते हैं-

भ्राम्यन्तो भ्रमयन्ति मन्दधिषणास्ते जन्तुचक्रं जडं
स्वात्मीकृत्यगुणाभिधानवशतोबद्ध्वादृढंबन्धनैः।।
दृष्ट्वेत्थं गुरुभारवाहविधये यातानुयातान्पशून्
तत्पाशप्रविकर्तनाय घटितं ज्ञानत्रिशूलं मया।।[29]

इसके अतिरिक्त एक स्थान पर यह भी कहा है कि जो महानुभाव वस्तु तत्व का विमर्श ठीक-ठीक कर लेते है उनके लिए

उपदेश करने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। जो लोग शास्त्रों का अध्ययन तो खूब करते हैं परन्तु ज्ञान समुद्र के पार पहुँच ही नहीं पाते उन्हें उपदेश करने से क्या लाभ–

ये तावत्प्रविवेकबन्ध्यहृदयास्तेभ्यः प्रणामो वरः
केऽप्यन्येप्रविवित्र्चतेनचगताःपारधिगेतात्र्जडान्।
यस्त्वन्यः प्रविमर्शसारपदवीसंभावनासुस्थितो
लक्षैकोऽपि स कश्चिदेव सफलीकुर्वीत यत्नं मम।।[30]

अतएव कहने का तात्पर्य यह है कि परात्रिंशिका विवरण नामक विषय अत्यन्त रहस्यात्मक है इसे लाखों में से कोई एक महानुभाव समझ सकता है। इस ग्रन्थ की सुग्राह्यता हेतु आचार्य द्वारा लिखी गयी इस पर टीका अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

तन्त्रसार–कश्मीर शैवदर्शन के अन्तर्गत त्रिक दर्शन प्रक्रिया का निरूपण करने हेतु आचार्य अभिनव गुप्त ने 'तन्त्रसार' नामक ग्रन्थ 22 आह्निको में विभाजित है। तन्त्रशास्त्र में ज्ञान प्राप्त करने हेतु इस ग्रन्थ का अध्ययन आवश्यक है इसकी आवश्यकता का स्पष्टीकरण करते हुए स्वयं आचार्य यह कहते है –

विततस्तन्त्रालोको विगाहितुं नैव शक्यते सर्वैः।
ऋजुवचनविरचितमिदंतुतन्त्रसारःततःशृणुत।।[31]

इस ग्रन्थ को तन्त्रालोक से सरल बताया है। इसके उद्देश्य को अभिनवगुप्त ने स्पष्ट करते हुए कहा है–

अज्ञानं किलबन्धहेतुरुदितः शास्त्रेमलं तत्स्मृतं,
पूर्णज्ञानकलोदये तदखिलं निर्मूलतां गच्छति।।
ध्वस्ताशेषमलात्मसंविदुदये मोक्षश्च तेनामुना,
शास्त्रेणप्रकटीकरोमिनिखिलंयज्ज्ञेयतत्त्वंभवेत्।।[32]

प्रत्येक आह्निक के अन्त में अभिनव गुप्त ने एक पद्य में विचार किये गये विषय को सङ्क्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है। इसके आह्निकों में क्रमशः – विज्ञानभेद, अनुपाय, शाम्भवोपाय, शाक्तोपाय आणवोपाय, कालाध्वा, देशाध्वा, तत्त्वाध्वा, तत्त्वभेद, कलाध्वा, शक्तिपात, स्नानविधि, समयदीक्षा, पुत्रकदीक्षा, सप्रत्यय दीक्षा, परोक्ष दीक्षा, लिङ्गोधार, अभिषेक, श्राद्धदीक्षा, समयनिष्कृति, गुरुपूजापवित्रिका विधि, व्याख्या विधि, आगम प्रमाण और कुल याग का प्रकाशन किया गया है। इस प्रकार इन विविध विषयों से युक्त यह ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

तन्त्रवटधानिका–आचार्य अभिनव गुप्त ने अपने इस ग्रन्थ में तन्त्रालोक में निहित विषयों का सङ्क्षेप में निरूपण किया है। कुछ विद्वानों का मत है कि तन्त्रवटधानिका ग्रन्थ मुख्य अभिनव गुप्त का लिखा हुआ नहीं है बल्कि इनके चाचा का कोई पुत्र भी अभिनव के नाम वाला था जिसे आचार्य ने अभिनवगुप्तविशेष नाम से अभिहित किया है उसी ने तन्त्रवटधानिका का निर्माण किया है–

इतिश्रीमदभिनवगुप्ताचार्यविरचितायां।

तन्त्रवटधानिकायां तृतीयमाह्निकम्।।[33]

कुछ भी हो लेकिन विद्वानों ने इस तन्त्रवटधानिका ग्रन्थ का कर्त्ता आचार्य अभिनवगुप्त को ही माना है।

परमार्थसार–आचार्य अभिनव गुप्त ने 150 आर्या छन्दों में इस परमार्थसार ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ पर योगराजाचार्य ने विवृत्ति लिखी है जो कि प्राप्त है। इस परमार्थसार में मुख्यरूप से शिवाद्वयशासन सम्बन्धी विषयों को सम्यक् रूप से प्रतिपादित किया गया है।

परमार्थचर्चा–यह ग्रन्थ भी आचार्य अभिनव गुप्त द्वारा

लिखा गया है। इस ग्रन्थ में केवल 9 पद्य हैं, इस पर हरभट्टशास्त्री द्वारा विवृत टीका उपलब्ध है। इस परमार्थ चर्चा नामक ग्रन्थ में त्रिकशास्त्र के शाम्भवोपाय द्वारा पर भैरव समावेशोन्मीलन का स्पष्टीकरण किया गया है।

बोधपञ्चदर्शिका–त्रिक शास्त्र सम्प्रदाय में जिज्ञासु सुकरमति शिष्यों के लिए 16 पद्यों में अभिनवगुप्त ने सार रूप में त्रिकदर्शन स्पष्ट किया है जिस पर हरभट्टशास्त्री का विवरण उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में नित्योदित संवित् के विषय में प्रमाण व्यापार की असमर्थता, शिवाद्वय भाव की सिद्धि, विश्ववैचित्र्य विलास, बोधरूपता, अणुबन्ध, बन्ध मोक्ष कल्पना का सरल तर्क सम्मत प्रतिपादन है।

अभिनवगुप्त के अन्य ग्रन्थ

तन्त्रशास्त्र से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों तथा स्तोत्रों का प्रणयन अभिनवगुप्त द्वारा किया गया है जिनके विषय में स्पष्ट वर्णन न करके केवल नामोल्लेख किया जा रहा है। श्री सिद्धनाथ कृत क्रमस्तोत्र पर आचार्य अभिनव गुप्त की 'क्रमकेलि' नामक टीका अब कहीं मिल नहीं रही है उसके कई एक पृष्ठ जयरथ कृत तन्त्रालोक विवेक में उद्धृत किये गये हैं। मालिनी तन्त्र के पूर्व भाग पर उन्होंने पूर्वपत्रिचका नाम की टीका लिखी थी वह भी कहीं मिलती नहीं हैं। इसके अतिरिक्त आचार्य अभिनव गुप्त के नाम से अनेक ग्रन्थों तथा स्तोत्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। इसके अन्तर्गत क्रमस्तोत्र, देहस्थदेवताचक्रस्तोत्र, भैरवस्तोत्र, परमार्थद्वादशिका, अनुभव निवेदन, महोपदेशविंशतिका, अनुत्तरशतिका, तन्त्रोच्चय, घटकर्परकुलकविवृति, क्रमकेलि, शिवदृष्ट्यालोचन, पूर्वपत्रिचका पदार्थप्रवेशनिर्णयटीका प्रकीर्णकविवरण, प्रकरणविवरण, काव्यकौतुक विवरण, कथामुखटीका लघ्वी प्रक्रिया, भेदवादविदारण, देवीस्तोत्रविवरण, तत्त्वार्थप्रकाशिका, शिवशक्त्यविनाभाव स्तोत्र, बिम्बप्रतिबिम्बवाद, परमार्थसङ्ग्रह, अनुत्तर शतक, प्रकरणस्तोत्र, नाट्यालोचन तथा अनुत्तरतत्त्वविमर्शिनी ग्रन्थों को शामिल किया जा सकता है–इनमें अन्तिम छः ग्रन्थ मिलते नहीं हैं। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं जिनका उल्लेख आचार्य ने स्वयं उपलब्ध अपने ग्रन्थ में किया है किन्तु वे प्राप्त नहीं है। 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद' पाण्डुलिपि के रूपमें अधिगत हुआ है जिसका सम्पादन यहाँ अपेक्षित है।

आचार्य अभिनवगुप्त का कश्मीर शैवदर्शन में ही नहीं अपितु साहित्य शास्त्र में भी अत्यन्त ही सुदृढ़ वैदुष्य रहा है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में आनन्दवर्धनाचार्य द्वारा विरचित ध्वन्यालोक ग्रन्थ के ऊपर 'लोचन' नामक टीका लिखी है तथा भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र पर 'अभिनव भारती' नामक टीका लिखी है। नाट्यशास्त्र तथा ध्वनि शास्त्र अभिनव के व्याख्यान मण्डप से सुतरां विभूषित माने गये हैं। विगत प्रायः एक सहस्त्र वर्ष का ध्वनि सिद्ध ान्त का इतिहास तो अभिनव की ही अद्वितीय व्याख्यान प्रतिभा की कहानी रहा है। इस पूरे कालान्तराल में ध्वन्यालोकार्थी व्यक्ति अभिनवगुप्त के लोचन टीका का ही सहारा लेता रहा है। लोचन इतना प्रौढ़ माना गया है कि सामान्य व्युत्पत्ति का व्यक्ति तो उसमें प्रवेश नहीं पा सकता। ध्वन्यालोक की लोचन टीका प्रौढ़ पाणि डत्य से मण्डित है यह ग्रन्थ के रहस्योद्घाटन में जितनी सक्षम है उससे भी कहीं अधिक परपक्ष के आक्षेप विदलन में है। नाट्यशास्त्र पर लिखी गयी इनकी अभिनव भारती टीका भी अप्रतिम है। रस निरूपण के सन्दर्भ में इनके अभिव्यक्तिवाद सिद्धान्त को सभी विद्व ानों द्वारा मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया गया। आचार्य अभिनवगुप्त ने गीतार्थसङ्ग्रह नामक एक गीता भाष्य भी लिखा है जिसकी शिक्षा उन्होंने भट्टेन्दुराज से प्राप्त की थी-

भट्टेन्दुराजादाम्नाय विविच्य च चिरं धिया।
कृतोऽभिनवगुप्तेनसोऽयंगीतार्थसङ्ग्रहः।।[34]

इस प्रकार श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्य के विषय में यह कहा जा सकता है कि इन्होंने ब्रह्मचर्य के व्रत को धारण करते हुए अपना सम्पूर्ण जीवन शास्त्राध्याय में ही व्यतीत कर दिया तथा विभिन्न विषयों के लगभग 40 ग्रन्थों का प्रणयन आचार्य अभिनवगुप्त के द्वारा किया गया। कश्मीर शैवदर्शन के जिज्ञासुओं के लिए आचार्य के ग्रन्थों के अध्ययन की परम उपादेयता है।

कश्मीर शैवदर्शन

आध्यात्मिक विद्या की मुख्य समस्या है-मानव जीवन की व्याख्या तथा संसार की व्याख्या अर्थात् यह संसार कैसे बना? क्यों बना? इसे किसने बनाया? इत्यादि। साथ ही यह भी समस्या है कि मानव जीवन का लक्ष्य क्या है? और इस लक्ष्य की प्राप्ति का उपाय क्या है? संसार की कर्मफल भोग की परम्परा को और पुनर्जन्म को हमारे सभी आस्तिक दर्शनों ने मान लिया है कि ये सब अनादि-अनादि काल से चले आ रहे हैं। यही सङ्क्षेप में दर्शन का आन्तरिक विषय है।

कश्मीर शैवदर्शन की दृष्टि में अपवर्ग, कैवल्य और निर्वाण नाम की ये तीनों ही अवस्थायें सुषिप्ति दशा के सूक्ष्म-सूक्ष्मतर प्रकार हैं। इन्हें वास्तविक मुक्ति नहीं माना जा सकता। ऐसी मुक्ति में विश्राम लेते हुए सुषुप्त प्राणी उस समय पुनः जग पड़ते हैं जिस समय श्री कण्ठनाथ शिव नवीन सृष्टि करने के लिए मूल प्रकृति को प्रक्षुब्ध करके उसमें नया गुण वैषम्य प्रकट करते हैं। शैवदर्शन में ऐसे प्राणियों को प्रलयकाल नाम दिया गया। इन प्राणियों को बद्ध जीवों में ही गिना जाता है।

अद्वैत वेदान्त की दृष्टि में उपनिषदों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन नाम के उपायों से तथा शम, दम, तितिक्षा, मुमुक्षा विरक्ति, विवेक आदि साधनों की सहायता से प्राणी को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि वह एकमात्र शुद्ध चैतन्य है जो सत् है, चित् है और आनन्द है, परन्तु उसे अपनी पारमेश्वरी शक्ति का साक्षात्कार नहीं होता, इसी कारण अद्वैत वेदान्तियों ने ईश्वर की ईश्वरता को

ब्रह्म का वास्तविक स्वभाव न मानकर उसे माया नाम की उपाधि के कारण केवल प्रतिभासिकतया ही प्रकाशित होता हुआ माना है। अद्वैत वेदान्तियों द्वारा ठहराई हुई इस शुद्धसच्चिदानन्दमयी और ऐश्वर्यहीन स्थिति को शैवी दृष्टि से सुषुप्ति की उस सूक्ष्मतर स्थिति में गिना जा सकता है जिसमें तुर्या दशा का ऐसा उन्मेष मात्र हुआ करता है जिसमें भावात्मक आनन्दमयता का अनुभव होता रहता है। उस स्थिति में ठहरे प्राणियों को शैवदर्शन में विज्ञानाकल नाम दिया गया है। सांसारिकबद्ध जीव सकल कहलाते हैं। कश्मीर शैवदर्शन पर न्यायशास्त्र की प्रतिपादन प्रक्रिया के अनुसार लिखा गया सबसे पहला ग्रन्थ है नवम शताब्दी के आचार्य 'सोमानन्द' की 'शिवदृष्टि'। इस ग्रन्थ के अन्त में इस दर्शन के विषय में विचार किया गया है।

शैवदर्शन का कश्मीर से सम्बन्ध

शैवदर्शन अथवा त्रिक दर्शन का कश्मीर से गम्भीर सम्बन्ध है। शैव और शाक्त सम्प्रदाय में द्वैतवाद और अद्वैतवाद दोनों सिद्धान्त विकसित हुए। कश्मीर से केवल अद्वैत शाखा का ही सम्बन्ध है। शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत इस अद्वैतवादी दर्शन की कश्मीर में स्थापना 'त्र्यम्बकादित्य' ने की थी।[35] कहते हैं भगवान् शिव ने अपने आगमों की द्वैतवादी व्याख्या देखकर अद्वैत मत के प्रचार के लिए महर्षि दुर्वासा को पृथ्वी पर भेजा। दुर्वासा ने त्र्यम्बकादित्य नाम के मानस पुत्र को उत्पन्न किया और उसे शिवागमों की अद्वैतवादी व्याख्या का कार्य सौंपा। त्र्यम्बकादित्य ने कश्मीर में शैव मठिका की स्थापना की। एक मत यह भी है कि यह शैव मठिका प्रारम्भ में कहीं अन्यत्र स्थापित की गयी थी। अनेक वर्षो बाद सोमानन्द इसे कश्मीर में लाये। किन्तु इसकी पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं है।

शैव मठिका कश्मीर में अत्यन्त विकसित हुई इसलिए शैवदर्शन को कश्मीर शैवदर्शन कहा जाता है। त्र्यम्बकादित्य ने इसकी कश्मीर में स्थापना की थी इसलिए इसे 'त्र्यम्बकदर्शन' भी कहा जाता है। यह अद्वैतवादी दर्शन है। कालान्तर में इस अद्वैतवादी दर्शन की दो शाखाएँ हो गयीं–स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र। स्पन्दशास्त्र का प्रवर्तन वसुगुप्त ने किया और प्रत्यभिज्ञा शास्त्र का प्रवर्तक सोमानन्द को माना जाता है।[36]

कश्मीर की निसर्ग रमणीया भूमि शैवदर्शन के विचारों और

आचार्यों के सान्निध्य से और भी पावनता को प्राप्त कर चुकी है। शैवदर्शन जो समस्त भारत भूमि पर विस्तीर्ण था वह सब किसी समय कश्मीर में ही सिमट कर रह गया। यह कश्मीर की पावनता का ही प्रतीक है। शैवदर्शन के साथ कश्मीर शब्द इस प्रकार जुड़ गया जैसे कश्मीर में भिन्न प्रकार का हो और अन्य प्रदेशों में भिन्न प्रकार का हो जबकि शैवदर्शन तो सर्वत्र एक सा ही है। हाँ इतनी विशेषता कश्मीर शैवदर्शन में अवश्य है कि वह अन्य प्रान्तों के शैवदर्शन की अपेक्षा अत्यन्त सौम्य और सरल है। दूसरी विशेषता यह है कि शैवदर्शन की द्वैत, अद्वैत तथा द्वैताद्वैत शाखाओं में अद्वैत शाखा ही यहाँ परिपुष्ट हुई है।

कश्मीर शैवदर्शन की प्रमुख शाखाएँ

कश्मीर शैवदर्शन की मुख्य शाखाओं और उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का सङ्क्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार किया जा सकता है-

पाशुपत दर्शन

कश्मीर शैवदर्शन की शाखाओं में यह एक प्रमुख शाखा है। पाशुपत दर्शन के अनुसार पाँच ही पदार्थ हैं-कार्य, कारण, योग, विधि और दुखान्त।

ज्ञानमात्रे यथा शास्त्रं साक्षाद्दृष्टिस्तु दुर्लभा।

पत्र्चार्थादन्यतो नास्ति यथावत्तत्त्वनिश्चयः।।[37]

इन्हीं पाँचों पदार्थों में पाशुपत दर्शन का रहस्य निगूढ़ है। स्वातन्त्र्य शक्तिहीन पदार्थ कार्य कहलाता है। इसमें जीव और जड़ दोनों ही आ जाते हैं। कार्य त्रिविध हैं-विद्या, कला तथा पशु। बोध और अबोध के भेद से विद्या दो प्रकार की है। कारण के अन्तर्गत महेश्वर कारण कहलाते हैं क्योंकि ये जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय के कर्त्ता हैं। इन्हीं का नाम पति भी है। जीव एक महेश्वर के सम्बन्ध को योग कहते हैं। यह सम्बन्ध मन के द्वारा होता है यह योग द्विविध है-क्रियात्मक और अक्रियात्मक। साधना अथवा साधक के उस व्यापार को जो महेश्वर की प्राप्ति कराये विधि कहते हैं। विधि दो प्रकार की है-मुख्य तथा गौड़। मुख्य विधि दो प्रकार की होती है-व्रत और द्वार। दुःखों का नाश दुखान्त कहलाता है। यह दो प्रकार का है अनात्मक और सात्मक। जब दुःख दग्धवीज

होकर स्वस्यतः नष्ट हो जाता है तब यह अनात्मक कहलाता है। इन पाँचों पदार्थो में पशु और पति मुख्य है इन्हीं को मानने के कारण यह शैवदर्शन पाशुपत नाम से अभिहित होता है।

शैव सिद्धान्त दर्शन

शैव सिद्धान्त शैवदर्शन की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है। यह द्वैतवादी दर्शन है। इसमें चार पाद, तीन रत्न और तीन पदार्थो को स्वीकृत किया गया है। विद्या, क्रिया, योग तथा चर्या ये चार पाद हैं। शिव, शक्ति और बिन्दु ये तीन रत्न है। पति, पशु और पाश ये तीन पदार्थ हैं। चार पाद के अन्तर्गत जो विद्यापाद है उसमें मन्त्र एवं मन्त्रेश्वरों का विवेचन किया गया है। क्रिया पाद में दीक्षा विधियों का तथा उनके अङ्गों का निरूपण है। परम पुरुषार्थ प्राप्ति के लिए स्वीकृत की गयी आचार पद्धति को दीक्षा कहते हैं। योग पाद में ध्यान पद्धति की व्याख्या की गयी है। विहित और निषिद्ध कर्मो की व्याख्या चर्यापाद में की गयी है। शिव, शक्ति और बिन्दु ये तीन तत्त्व रत्न कहलाते हैं। ये तीनों तत्त्व शुद्ध जगत् के कर्त्ता हैं। शिव, का नाम पति है। शक्ति दो प्रकार की होती है-समवामिनी तथा परिग्रहरूपा विन्दु के दो रूप हैं-शुद्ध और अशुद्ध। तीन पदार्थो के अन्तर्गत पति, पशु और पाश का अध्ययन किया जाता है। शिव या परम शिव को पति कहा जाता है। जगत् की सृष्टि स्थिति संहार तिरोभाव तथा आग्रह इन पाँच कृत्यों के साक्षात् कर्त्ता शिव हैं। शिव की दो अवस्थायें हैं-लय तथा भोग। जीव की पशु सञ्ज्ञा है। पशु अणु परिमाण परिछिन्न तथा अल्प शक्ति युक्त है। यह पशु तीन प्रकार का है-विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। तीन प्रकार के मल होते हैं-आणव मल, कार्मण मल तथा मायीय मल। क्षीण कर्म विज्ञानाकल कहलाते हैं। प्रलयाकल पशु वे कहलाते हैं जिनमें आणव मल तथा कार्मल शेष रहता है। पाश का अर्थ बन्धन

है। यह पाश ही जीवों को पशुत्व प्रदान करता है। पाश चतुर्विध है–मल, कर्म, माया और रोधशक्ति। जीव की स्वाभाविक शक्तियों का आविर्भाव ही मोक्ष है। यह मल के आवरण के दूर करने से होता है। मलावरण का नाश क्रिया से होता है और यह क्रिया शिव के अनुग्रह से होती है। शिव ही दीक्षा के द्वारा जीव को भवबन्धन से मुक्त करते हैं। तान्त्रिकों के अनुसार कैवल्य ज्ञान से मोक्ष नहीं मिलता क्रिया शक्ति से मिलता है। तीक्ष्ण असिधार भी अपने को नहीं काट सकती। वस्तुतः मोक्ष का कोई धाम नहीं है यह तो अज्ञान ग्रन्थि के भेद से अपनी शक्तियों का आविर्भूत होना ही मोक्ष नाम से जाना जाता है–

मोक्षस्यनैवकिञ्चिद्धामाऽस्तिन्चापिगमनमन्यत्र।

अज्ञानग्रन्थिभिदास्वशक्त्यभिव्यक्ततामोक्षः।।[38]

इस प्रकार शैव सिद्धान्त की दार्शनिक दृष्टि द्वैतवाद की है।

वीर शैव सिद्धान्त दर्शन

वीरशैव सिद्धान्त का दूसरा नाम लिङ्गायत सम्प्रदाय है। वीर शैवदर्शन के सिद्धान्त श्री पति विरचित ब्रह्मसूत्र के श्रीकर भाष्य में तथा शिवयोगी के सिद्धान्त शिखामणि ग्रन्थ में वर्णित हैं।[39] यह कर्म प्रधान है। इसका कर्मानुष्ठान इतना कठोर है कि उसका पालन वीर पुरुष ही कर सकता है। शक्ति विशिष्ट जीव और शक्ति विशिष्ट शिव का परस्पर एक हो जाना ही शक्ति विशिष्टाद्वैत है।

शक्ति शिव का विशेषण है जो शिव से पृथक् नहीं रहती। यह शक्ति दो प्रकार की होती है–सूक्ष्म चिदचिद् विशिष्ट शक्ति और स्थूल चिदचिद् विशिष्ट शक्ति। प्रथम शक्ति पर शिव कहलाती है और दूसरी शक्ति जीव कहलाती है। शक्ति तथा शिव दोनों में अभेद है। यह शक्ति नित्य है–

तदीया परमा शक्तिः सच्चिदानन्दलक्षणा।।
समस्तलोकनिर्माणसमवायस्वरूपिणी।
तदिच्छयाऽभवत्साक्षात् तत्स्वरूपानुकारिणी।।[40]

यह जगत् शक्ति से प्रसूत हुआ है। शक्ति नित्य है अतः जगत् भी नित्य है-

यस्मादेतत् समुत्पन्नं महादेवाच्चराचरम्।
तस्मादेतन्न भिद्येत यथा कुम्भादिकं मृदः।।
शिवतत्त्वात् समुत्पन्नं जगदस्मान्न भिद्यते।
फेनोर्मिबुद्बुदाकारं यथा सिन्धोर्न भिद्यते।।[41]

जिस प्रकार फेन ऊर्मि बुदबुद समुद्र से भिन्न नहीं होते हैं, वैसे ही शिव से उत्पन्न यह जगत् भी शिव से भिन्न नहीं है। शिव से जगत् की उत्पत्ति न तो परिणामवाद से कही जा सकती है और न विवर्तवाद शब्द से यह तो शक्तिविकास है। जब संसार का लय होता है तब यह शक्ति सङ्कोच कहलाती है-

आत्मशक्तिविकासेन शिवो विश्वात्मना स्थितः।
कुटीभावाद् यथा भाति पटःस्वस्य प्रसारणात्।।[42]

वीरशैव सिद्धान्त दर्शन में जो ज्रीव है वह शिव का अंश है। यह शिव से भिन्न भी है और अभिन्न भी। दोनों को नितान्त अभिन्न नहीं कहा जा सकता है क्योंकि शिव के सर्वज्ञत्व आदि गुण जीव में नहीं पाये जाते। दोनों को भिन्न भी नहीं कह सकते, अन्यथा जीवों में ज्ञान का सर्वथा अभाव प्रसक्त होगा।

शिव सच्चिदानन्दस्वरूप नित्य अनादि अनन्त और सर्वशक्ति सम्पन्न है। इसमें जब विमर्श शक्ति का उन्मेष होता है तब वह उन्मेष शिव तत्त्व कहलाता है। ये शिव तत्त्व 36 (छत्तीस) हैं। यह

जगत् और जीवों का प्रपञ्च पर शिव से उत्पन्न होता है और उसी में लीन हो जाता है।

रसेश्वर दर्शन

रसेश्वर दर्शन भी शैवदर्शन की एक शाखा है। रस पारद को कहते हैं। रस ही ईश्वर है। इस रस के सेवन से शरीर बलिष्ट और दिव्य बन जाता है। मुक्ति के लिए ज्ञान तथा ज्ञान के लिए अभ्यास को करने हेतु दृढ़ शरीर का होना आवश्यक है। शरीर की दृढ़ता के लिए सर्वोत्तम औषधि पारद है। यह पारद तीन प्रकार का होता है-मूर्च्छित, मृत और बद्ध। मूर्च्छित पारद रोगों का शमन करता है। मृत पारद जीवन देता है तथा बद्ध पारद खेचरी शक्ति प्रदान करता है। पारद को रस और रस को ईश्वर कहा जाता है। इसके सेवन से शरीर भी दिव्य बन जाता है तथा दिव्य शरीर आत्मसाक्षात्कार के अभ्यास में सहायता करता है। रस का यही ईश्वरत्व है। रससिद्ध कवीश्वरों के शरीर में जरा-मरण का भय नहीं रहता है। रस ब्रह्म का प्रतीक है।

व्याकरण दर्शन

व्याकरण दर्शन शैव सम्प्रदाय से प्रसूत एक महत्त्वपूर्ण दर्शन की शाखा है। जिसके आविष्कर्त्ता महर्षि पतञ्जलि और पोषक श्री भर्तृहरि हैं।[43] व्याकरण दर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य शब्दाद्वैतवाद है। इसके अनुसार शब्द ही एक सत्य तत्त्व है जिसका स्वरूप है-स्फोट। स्फोट से व्यवहारयोग्य शब्द और अर्थ का स्फुटन एक बार में ही नहीं होता। यह चार स्तरों को पार करता हुआ व्यवहार के योग्य होता है। ये चार प्रकार हैं-परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। यह परावाक् अक्षर शब्द ब्रह्म है। यह व्यवहार के योग्य नहीं होता। जगत् इसी का आविर्भाव है। अव्यवहार्य होने के कारण भर्तृहरि ने इस परावाक् का त्याग करके त्रयी वाक् का विवेचन किया है-

वैखर्या मध्यमायाश्च पश्यन्त्याश्चैतदद्भुतम्।
अनेकतीर्थभेदायास्त्रय्या वाचः परं पदम्।।[44]

पश्यन्ती वाक् चैतन्य रूपा है। इसमें ग्राह्य और ग्राहक का भेद ज्ञात नहीं होता। परावाक् के समान यह भी व्यवहार योग्य नहीं होती किन्तु इसमें मध्यमा वाक् को प्रेरित करने की योग्यता रहती है। पश्यन्ती वाक् का किञ्चित् विकसित रूप मध्यमा वाक् कहलाती है। किन्तु इस रूप में भी अभी तक वह अव्यवहार्य ही रहती है। जब इन्द्रियों के अभियान से प्राण में स्थूल वृत्ति का उदय होता है तब बैखरी वाक् का प्रादुर्भाव होता है। यही वाक् व्यवहार के योग्य होती है। इसमें शब्दों का क्रम स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होता है। चिन्तन मध्यमा से होता है और व्यवहार बैखरी से होता है। वैयाकरण तत्त्वमीमांसा के अन्तर्गत द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव के अतिरिक्त एक शक्ति तत्त्व को भी पृथक् पदार्थ के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार यह व्याकरण दर्शन शब्दाद्वैतवाद का प्रतिपादक है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन

प्रत्यभिज्ञा दर्शन का मुख्य आधार ग्रन्थ सोमानन्द की 'शिवदृष्टि' है। त्रिक दर्शन इसी प्रत्यभिज्ञा दर्शन का अपर नाम है। इस प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन इस प्रकार से किया जा सकता है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन अथवा त्रिक दर्शन पूर्णरूपेण अद्वैतवादी दर्शन है। इस अद्वैतवाद का नाम ईश्वराद्वय है। इस दर्शन के अनुसार परमेश्वर ही एक तत्त्व है। यह जगत् स्वयं उसी का ग्रहण किया हुआ एक रूप है। यह शिव से अभिन्न होता हुआ भी अभिन्न सा प्रतीत होता है। परमेश्वर स्वतन्त्र है। वह अपने रूप को आवृत्त करने में तथा अभिव्यक्त करने में समर्थ है।

जगत् के स्वरूप को विवेचित करने वाला सिद्धान्त प्रत्यभिज्ञा

दर्शन में दर्पण बिम्बवाद कहलाता है। दर्पण में प्रतिबिम्ब वृक्ष आदि दर्पण से अभिन्न होते हुए भी दर्पण से भिन्न प्रतीत होते हैं। वैसे ही परमेश्वर में प्रतिबिम्बित यह जगत् परमेश्वर से यद्यपि अभिन्न है फिर भी घट पटादि रूप से भिन्न प्रतीत होता है। परमेश्वर स्वेच्छा से स्वभित्ति में विश्व का उन्मीलन करता है।

स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।[45]

प्रतिबिम्ब रूप होते हुए भी त्रिक दर्शन के अनुसार जगत् मिथ्या नहीं है। क्योंकि यह परम शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति का विलास है। जगत् विषयक यह प्रतिबिम्बवाद त्रिक दर्शन में आभास वाद भी कहलाता है–

आभासरूपा एव जड चेतन पदार्थः।[46]

अद्वैत वेदान्ती भी जगत् को आभास मानते हैं। परन्तु उस आभास में और प्रत्यभिज्ञा दर्शन के आभासवाद में बहुत भेद है। त्रिक दर्शन का यह आभासवाद जगत को मिथ्या नहीं कहता। बल्कि जगत् यथार्थ है। जिस प्रकार एक चक्रवर्ती सम्राट् अनेक वाहनों के होते हुए भी स्वेच्छावशात् कभी–कभी मनोविनोद के लिए पदाति भी चलता है वैसे ही परम शिव भी जगत् को बनाकर क्रीड़ा करता है। वह इच्छा का दास नहीं है बल्कि इच्छा उसका अनुगमन करती है।

यथा नृपः सार्वभौमः प्रभावामोदभावितः।
क्रीडन् करोति पादातधर्मास्तद्धर्मधर्मतः।।
तथा प्रभुः प्रमोदात्मा क्रीडत्येवं तथा तथा।।[47]

सृष्टि और संहार दोनों उसकी लीला का विलास हैं। इसे स्वातन्त्र्यवाद भी कहा जाता है। त्रिक दर्शन में शिव और शक्ति का अभेद स्वीकार किया गया है। शक्ति शिव से पृथक् नहीं रह

सकती। शिव भी शक्ति के बिना कभी नहीं रहता। शक्ति से सम्पन्न होकर ही शिव स्वेच्छा से जगत् का आविर्भाव करते हैं-

न शिवः शक्तिरहितो न शक्तिर्व्यतिरेकिणी।
शिवःशक्तस्तथा भावानिच्छया कर्त्तुमीदृशान्।।
शक्तिशक्तिमतोर्भेद् शैवे जातु न वर्ण्यते।।[48]

यही सिद्धान्त शङ्कराचार्य ने भी कहीं न कहीं वर्णित किया है। प्रत्यभिज्ञा दर्शन का साधन मार्ग अन्य दर्शनों की अपेक्षा अधिक हृदयग्राही है। इसमें ज्ञान और भक्ति दोनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। चित् का अर्थ है ज्ञान और आनन्द का अर्थ है भक्ति। ज्ञान के होने पर ही भक्ति का उदय होता है तथा भक्ति के होने पर ही ज्ञान की ओर प्रवृत्ति होती है। मोक्ष का मुख्य साधन प्रत्यभिज्ञा है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है-पहचानना। शिव के गुणों को पहचानने से शिवत्व लाभ होता है-

तैस्तैरप्युपयाचितैरुपनतस्तन्व्याः स्थितोऽप्यन्तिके
कान्तो लोकसमान एवमपरिज्ञातो न रन्तुं यथा।
लोकस्यैष तथानवेक्षितगुणः स्वात्मापि विश्वेश्वरो
नैवालं निजवैभवाय तदियं तत्प्रत्यभिज्ञोदिता।।[49]

कामिनी सम्मुख उपस्थित प्रियतम को पहचाने बिना आनन्दित नहीं होती है उसी प्रकार अभिन्न शिव को पहचाने बिना चिदानन्द लाभ नहीं होता। शिव की पहचान गुरु के उपदेश से आत्म-चैतन्य के स्फुरण होने पर ही होती है।

क्रम दर्शन

क्रम दर्शन शक्ति दर्शन के अन्तर्गत एक विशिष्ट विचार धारा है। यह भी अद्वैतवादी दर्शन है। इस क्रम दर्शन का वर्णन अभिनव गुप्त ने तन्त्रालोक में किया है।

क्रम दर्शन का सम्बन्ध क्रम से है। क्रमदर्शन के अनुसार मुक्ति सहसा प्राप्त नहीं होती, उसको उपायों द्वारा क्रमशः प्राप्त किया जाता है। क्रम दर्शन को **कालीनय देवीनय** तथा **औत्तराम्नाय** भी कहा जाता है। इसको कालीनय इसलिए कहा जाता है क्योंकि इस मत में परम तत्त्व का नाम 'काली' है। इस काली का नाम ही देवी है।

इसको पञ्चचक दर्शन भी कहा जाता है। तत्त्वों को पाँच-पाँच के समूह में विभक्त करने के कारण इसको पञ्चचक दर्शन कहते हैं। यह पञ्चचक इस प्रकार से हैं-पर तत्त्व पाँच रूप में स्फुरित होता है-ये पाँच स्फुरण पञ्चवाह कहलाते हैं। इनके नाम हैं-व्योम, वामेश्वरी, खेचरी, दिक्चरी, गोचरी तथा भूचरी। पर तत्त्व पाँच प्रकार के कार्य करने की सामर्थ्य रखता है। ये कार्य हैं-जगत् की सृष्टि, स्थिति, संहार अनाख्य तथा भासा (स्वप्रकाशत्व)। वाणी के चार प्रकार व्याकरण में मान्य हैं किन्तु क्रम दर्शन में एक और प्रकार 'सूक्ष्म' को जोड़कर वाक्पञ्चक माना जाता है। ध्येय पञ्चक के अन्तर्गत इस क्रमदर्शन में निदिध्यासन का अत्यन्त महत्त्व है। इसमे पाँच स्थानो का वर्णन है-श्रीपीठ, पञ्चवाह, नेत्रत्रय, वृन्दचक्र तथा गुरुपङ्क्ति। निज शक्ति पञ्चक के अन्तर्गत-चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया को माना गया है। कृत्य पञ्चक के अन्तर्गत क्रम दर्शन की मान्यता के अनुसार 'काली' को परम तत्त्व माना गया है। यह काली पाँच कृत्यों का सम्पादन करती है-क्षेप, ज्ञान प्रसङ्ख्यान, गति तथा नाद।

क्रम दर्शन का मूल तत्त्व काली है।[50] प्रायः काल की पत्नी काली कही जाती है। काल शिव का नाम है। किन्तु क्रम दर्शन में काली का यह अर्थ नहीं है। काली शब्द 'कल्' धातु से घञ् प्रत्यय करने पर स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीप् प्रत्यय करने पर निष्पन्न

हुआ है। इसलिए काली के पाँच व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ हैं-विक्षेप करने वाली, ज्ञान देने वाली, ज्ञान रखने वाली, गति देने वाली, सभी पदार्थों को अपने में समेटकर अपने आत्मचैतन्य स्वरूप से शेष रहने वाली। 'काली' तत्त्व को मातृसद्भाव व्योमवामेश्वरी तथा कालकर्षिणी नामों से भी अभिहित किया जाता है। काली काल के प्रभाव से भी अस्पृष्ट है। वह काल का भी कलन करती है। क्रमदर्शन की आचार-मीमांसा बड़ी महनीय है। इसमें पातञ्जल योग में निर्दिष्ट अभ्यास वैराग्य रूप राजयोग तथा प्रणव जप को प्रमुखता दी गयी है। इसमें काली की वाह्यपूजा का विधान नहीं है, बल्कि अन्तर्याग से काली प्रसन्न होती है।

कौल दर्शन

शाक्त सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्राचीन काल में एक अन्य महत्त्वपूर्ण आचार-विचार की पद्धति प्रचलित थी जिसे कौलाचार अथवा कौल दर्शन कहा जाता था। काल की दृष्टि से यह दर्शन तान्त्रिक सम्प्रदायों में सबसे प्राचीन है। प्रत्यभिज्ञा मत से इसमें यह अन्तर है कि प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार मुक्ति का उपाय प्रत्यभिज्ञा है जबकि कौल दर्शन शाम्भव उपाय से मुक्ति मानता है। कौल दर्शन के आचार सिद्धान्त का मूल तत्त्व है कुल। यह एक पारिभाषिक शास्त्रीय शब्द है। कुल का अर्थ है परम शिव की स्वातन्त्र्य शक्ति।

कुलं च परमेशस्य शक्तिः सामर्थ्यमूर्ध्वता।
स्वातन्त्र्यमोजोवीर्यचपिण्ड:संविच्छरीरकम्।।[51]

यह शक्ति नित्य है-इसमें मद्य, मांस, मीन, मुद्रा और मैथुन इन पाँच मकारों का सेवन किया जाता है। जितेन्द्रिय राजयोगी ही इसका अधिकारी है। वैदिक तथा शैव सभी की आचार पद्ध

तियों से यह कुलाचार उत्कृष्ट है। इसलिए इसे ऊर्ध्वाम्नाय भी कहा जाता है क्योंकि यह सब धर्मों से ऊर्ध्व है। कौल दर्शन की तत्त्व मीमांसा का मूल तत्त्व संवित् है। अन्य दर्शनों में संवित् शब्द से ज्ञान सामान्य का ग्रहण किया जाता है, किन्तु कौल दर्शन में इसका यह अर्थ नहीं है। इस दर्शन में वह प्रकाश-विमर्श रूप वह बीज रूपिणी शक्ति है जिसे त्रिपुरा महात्रिपुर, सुन्दरी ललिता अनुत्तरा परावाक् आदि नामों से कहा जाता है। इन नामों से यह प्रकट होता है कि यह दर्शन शाक्त मत पर अवलम्बित है। वैयाकरण जिस पर तत्त्व को शब्द ब्रह्म या पश्यन्ती वाक् कहते हैं, कौल दर्शन उसी को परावाक् कहता है। कौल दर्शन अद्वैतवाद के साथ भक्ति का मनोहारी समन्वय उपस्थित करता है।

भोगोयोगायतेसाक्षात्पातकंसुकृतायते।
मोक्षायतेचसंसारःकुलधर्मेकुलेश्वरि।।[52]

यह वह महनीय दर्शन है जहाँ भोग, योग बनकर उपस्थित हुआ है पाप भी पुण्य बन जाता है और संसार मोक्ष का आनन्द प्रदान करता है।

इस प्रकार शैवदर्शन की विभिन्न शाखाओं तथा उनमें प्रतिपादित तत्सम्बन्धी सिद्धान्तों का सङ्क्षिप्ततया निरूपण किया गया।

कश्मीर शैवदर्शन के प्रमुख आचार्य

कश्मीर शैवदर्शन के आदि गुरु महामुनि दुर्वासा हैं। कश्मीर मण्डल में आठवीं और नवीं सती के बीच त्र्यम्बक मठिका के अनेक सिद्धों को कई एक उत्कृष्टतर आगम शास्त्रों का दर्शन अर्थात् स्वतः सिद्ध ज्ञान शिव के अनुग्रह से प्राप्त हो गया। उनमें से छः आगमों की विशेष महिमा है और वे सौर, भर्गशिखा आदि आगम हैं। इन छः आगमों के अतिरिक्त शेष शैव आगमों का प्रचार सारे भारत में रहा है। भगवान् शिव ने आगमों से तीन वर्गो का ज्ञान इस पृथ्वी के साधकों को दिया। इस कश्मीर शैवदर्शन से सम्बन्धित प्रमुख आचार्यो का सङ्क्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

आचार्य वसुगुप्त

आठवीं शताब्दी के अन्त के आस-पास कश्मीर में त्र्यम्बक मठिका में आचार्य वसुगुप्त नामक सिद्ध प्रकट हुए। इन आचार्य महोदय को शिव के अनुग्रह से **'शिवसूत्र'** नामक एक सङ्क्षिप्त और परिमार्जित आगम ग्रन्थ प्राप्त हुआ। आगम होता हुआ भी यह ग्रन्थ आगम शैली का न होकर सूत्र शैली का है। आचार्य महोदय प्रायः शिवभाव आवेश में रहने के कारण ग्रन्थ रचना में रुचि नहीं दिखायी। आचार्य वसुगुप्त को शिवसूत्र की प्राप्ति महादेव पर्वत पर सिद्धादेश से हुई।[53] अतः आचार्य वसुगुप्त ने किसी ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया। उन्होंने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काम यह किया कि **'शिवसूत्र'** पर गम्भीर चिन्तन-मनन करके उसमें से कश्मीर शैवदर्शन के स्पन्द सिद्धान्त को खोज करके निकाला।

भट्ट भास्कर

भट्ट भास्कर वसुगुप्त के शिष्य थे इन्होंने वसुगुप्त निर्मित शिवसूत्रों के रहस्य को विशद् करने के लिए **शिवसूत्रवार्तिक** की रचना की।

क्षेमराज

इनका समय 975 ई0 से 1025 ई. के मध्य माना गया है। ये आचार्य अभिनव गुप्त के प्रमुख शिष्य थे। इन्होंने 'शिवसूत्र-विमर्शिनी' नामक वैदुष्य पूर्ण ग्रन्थ की रचना की।[58] इनके अन्य ग्रन्थ-उद्योत, प्रत्यभिज्ञाहृदयम्, स्पन्द सन्दोह, शिवस्तोत्रावली की टीका, परा प्रवेशिका तथा बोध विलास है।

जयरथ

आचार्य जयरथ के विषय में प्रामाणिक इतिहास कहीं पर प्राप्त नहीं होता। जयरथ की कीर्ति का स्तम्भ उनकी तन्त्रालोक पर **विवेक** टीका है। इन्होंने यह टीका तन्त्रालोक के रहस्यों को स्पष्ट करने के लिए लिखी थी। जयरथ दर्शन शास्त्र और साहित्य शास्त्र के पूर्ण मर्मज्ञ विद्वान् थे। उनकी तीन रचनायें प्राप्त होती हैं-तन्त्रालोक विवेक, अलङ्कार विमर्शिनी-यह रुय्यक रचित अलङ्कार सर्वस्व की टीका है तथा अलङ्कारोदाहरण-यह जयरथ की मौलिक रचना है।

रामकण्ठ

रामकण्ठ ने स्पन्द कारिका की टीका में स्वयं को उत्पल देव का शिष्य कहा है। इन्होंने कल्लट की स्पन्दकारिका पर **स्पन्दविवरण ासारमात्रम्** टीका लिखी है, जिसे **स्पन्दविवृति** भी कहा जाता है। इनकी दो रचनाओं का उल्लेख प्राप्त होता है-मातङ्गतन्त्र की टीका तथा शैवदृष्टि से भगवद्गीता पर लिखी गयी एक टीका। सम्प्रति ये दोनों ही ग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं।

श्रीकण्ठसूरि

श्रीकण्ठसूरि स्वयं को रामकण्ठ का शिष्य कहते हैं। इनका समय 1050 से 1075 ई0 होना चाहिए। इनकी एक ही रचना-रत्नत्रय है। इन्होंने भी कश्मीर शैवदर्शन के सिद्धान्तों के सन्दर्भ में इस पुस्तक का प्रणयन किया। रामकण्ठ के शिष्य होने के कारण ये रामकण्ठ से पश्चात् ही हुए हैं-ऐसी मान्यता है।

भट्ट नारायण

भट्ट नारायण कल्लट के समकालीन थे इनका ग्रन्थ है-**स्तवचिन्तामणि**। अभिनव गुप्त ने इनको अपने परमार्थसार में उद्धृत किया है। इनके पिता का नाम अपराजित तथा पितामह का नाम परमेश्वर था।[59]

नारायण कण्ठ

नारायण कण्ठ के पिता का नाम विद्याकण्ठ और पितामह का नाम शङ्कर था। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी है। इनके ग्रन्थ का नाम है **मगेन्द्रवृत्ति**। यह मगेन्द्रतन्त्र की टीका है।

योगराज

योगराज क्षेमराज के शिष्य थे।[60] इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी होना चाहिए। योगराज की प्रसिद्ध रचना है-परमार्थसार टीका। इस टीका की रचना के पहले ही वह संसार से विरक्त होकर तपस्वी जीवन बिताने लगे थे और कश्मीर में वितस्तापुरी में रहने लगे थे।

भास्कर कण्ठ

भास्कर कण्ठ ने अभिनव गुप्त की ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी पर विद्वतापूर्ण टीका लिखी है जो **'भास्करी'** कहलाती है। इस टीका ने ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी को समझना अत्यन्त सरल कर

दिया। भास्कर कण्ठ का गोत्र धौम्यायन था। इन्होंने भास्करी के अतिरिक्त तीन ग्रन्थ और लिखे हैं–लल्लावाक् का संस्कृत अनुवाद, योग वशिष्ठ की टीका तथा हर्षेश्वरस्तव।

गोरक्ष (महेश्वरानन्द)

गोरक्षनाथ की **महार्थमत्र्जरी** त्रिक दर्शन का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। ये महाराष्ट्र निवासी माध्व के पुत्र थे। ये महाप्रकाश के शिष्य और अभिनव गुप्त के अनुयायी थे। इनका समय बारहवीं शताब्दी है। इन्होंने महार्थमत्र्जरी पर 'परिमल' नाम की टीका भी लिखी है जो ग्रन्थ को सरल बनाती है। गोरक्ष का दर्शन महार्थ या महानम था जो कि त्रिक दर्शन के बहुत भिन्न नहीं है।

वरदराज (कृष्णदास)

वरदराज अथवा कृष्णदास शैवमतानुयायी मधुराज के सबसे छोटे पुत्र थे तथा ये क्षेमराज के शिष्य थे।[61] ये कश्मीर में ही रहते थे। इनकी एकमात्र रचना है–शिवसूत्र वार्तिक। यह ग्रन्थ भट्ट भास्कर द्वारा रचित शिवसूत्रवार्तिक से भिन्न है।

इस प्रकार कश्मीर शैवदर्शन से सम्बन्धित आचार्यों तथा उनकी कृतियों के विषय में विचार किया गया। इन आचार्यो ने शैवदर्शन के मूल सिद्धान्तों, उनके मूल तत्त्वों तथा उसमें निहित उद्देश्यों को सरल रूप में प्रस्तुत किया तथा कश्मीर शैवदर्शन की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने में अपना योगदान दिया।

शैवदर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों का निरूपण

भारतीय ज्ञान और साधना की धारा निगम और आगम दो रूपों में प्रभावित होती आ रही है। नैगमिक या वैदिक प्रवाह का मूल यदि भगवान् विष्णु का उच्छवास है तो आगमिक या तान्त्रिक प्रवाह का मूल शिव के मुख। ये दोनो धारायें अनादि और स्वतन्त्र थीं। परवर्ती काल में दोनों धाराओं के अनुयायी परस्पर प्रभावित हुए और एक के सिद्धान्त आचार और व्यवहार दूसरे के सिद्धान्त, आचार और व्यवहार से अंशतः मिश्रित हो गये। फलतः एक मिश्रित आचार परम्परा चल पड़ी। वैदिक वाङ्मय में रुद्रसूक्त, श्वेताश्वतर, पाशुपत, ब्रह्म , त्रिपुरातापिनी, त्रिपुरा कठरुद्र भावना आदि उपनिषदों तथा तान्त्रिक उपासना एवं साधनों में वैदिक मन्त्रों का प्रयोग इसी व्यवस्था की देन है।[62]

किसी दर्शन के तीन आधार स्तम्भ होते हैं-तत्त्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा और आचार मीमांसा। तत्त्व मीमांसा से तात्पर्य उस चिन्तन से है-जिसमें पदार्थो की सङ्ख्या उनकी सत्यता तथा असत्यता पर विचार किया जाता है। ज्ञान मीमांसा का अर्थ है-उन प्रमाणों का विवेचन जिनके द्वारा उन तत्त्वों का ज्ञान किया जाता है। आचार मीमांसा में मोक्ष के उपायों का विचार किया जाता है। इन तीनों ही विषयों के सन्दर्भ में शैवदर्शन की मान्यताएँ तथा सिद्धान्त अन्य दर्शनों से सर्वथा विलक्षण हैं। कश्मीर शैवदर्शन के तत्त्वों या सिद्धान्तों का विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है-

परम सत्ता

विश्व के मूल में परम सत्ता को सभी मत किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं। तन्त्र उसका अपवाद नहीं है। यहाँ जिस परम सत्ता को स्वीकार किया गया है वह अखण्ड है। पूर्णतत्त्व की जो गम्भीरतम स्थिति है उसमें सत्, चित्, आनन्द की कल्पना असम्भव है। वह निरंश निर्विशेष स्थिति है। इस गम्भीरतम सन्मात्र की स्थिति में आत्मप्रकाश के रूप में इसी परम सत्ता की एक कला प्रस्फुटित होती है जिसे तन्त्र की भाषा में चित् या चिति कहा जाता है। उसका यह चिद्भाव उसकी बहिरुन्मुखता का आदि प्रकाश है। इसे तान्त्रिक भाषा में 'अनुत्तर' कहते हैं।[63] संस्कृत भाषा का अथवा माहेश्वर सूत्र का 'अ' इसी का प्रतीक है। उस परम सत्ता से यह चिद्भाव शाश्वत निकलता रहता है। सत् में स्पन्दन के कारण जिस प्रकार चित् का बर्हिभाव होता है उसी प्रकार चित् में भी स्पन्दन होता है। इस स्पन्दन के फलस्वरूप एक ओर चित् सत् को पकड़े रहता है तो दूसरी ओर उससे द्वितीय चित् उत्पन्न होता है। यह द्वितीय चित् जब प्रथम चित में प्रतिबिम्बित होता है तब अपने स्वरूप को देखता है। उसकी अपनी सत्ता की यही पहचान या अनुकूल संवेदन 'आनन्द' कही जाती है।[64] व्यवहार जगत् में यह दर्पण गत प्रतिबिम्ब की स्थिति जैसी है। इससे यह सिद्ध होता है कि अखण्ड सत्ता चित्स्वरूप है। जो सत् है वही चित् है। जो चित् है वही सत् है। यह सत्ता स्वतन्त्र अर्थात् अन्य निरपेक्ष है। सत्यं शिवं सुन्दरम् या सत् चित् आनन्द से इसी सत्ता का अभिव्यत्र्जन होता है। यह विशुद्ध सत् अभिव्यक्ति की दृष्टि से चित् तथा रसास्वाद की दृष्टि से आनन्दस्वरूप है। यही शैवों के अनुसार परम शिव और शाक्तों के अनुसार परमा शक्ति है। यद्यपि पूर्व कौल इन दोनों में शेष शेषी भाव मानते हैं किन्तु उत्तर कौल ऐसा नहीं मानते। वस्तुस्थिति भी

यही है। शक्ति के बिना शिव इच्छा ज्ञान क्रिया से हीन स्पन्दन में असमर्थ शवमात्र है–

शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं,
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।
अतस्त्वामाराध्यं हरिहरविरञ्चादिभिरपि
प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृतपुण्यः प्रभवति।।[65]

प्रकाशात्मक शिव के बिना शक्ति भी आत्म प्रकाश में असमर्थ है। शिव और शक्ति को पृथक् करके न तो अनुभव किया जा सकता है और न विवेचन किया जा सकता है। यह तो साधक के दृष्टिकोण का रूप है कि वह उन्हें पृथक्–पृथक् देखता है। वह शिव को आधार बना लेता है और शक्ति को आधेय कल्पित कर लेता है। वास्तव में तो इनमें कोई भेदात्मक सम्बन्ध है ही नहीं ये दोनों परस्पर नितान्त अभिन्न हैं। दोनों चिद्रूप हैं और उसी प्रकार अभिन्न है जैसे अग्नि और उसकी दाहकता शक्ति। यही परम साम्य अद्वैत स्थिति है। इसमें लिङ्ग भेद नहीं है। यद्यपि यह अभेद की स्थिति है तथापि भेददृष्टि रखने पर इसमें भेद दिखलाई पड़ता है। शक्ति से युक्त शिव जैसा चाहता है वैसा करता है–

यत्र स्थितमिदं सर्वं कार्यं यस्माच्च निर्गतम्।
तस्यानावृतरूपत्वान्न निरोधऽस्ति कुत्रचित्।।[66]

जागतिक दृष्टिकोण से शिवांश निष्क्रिय और साक्षी है तथा शक्त्यंश सदा पञ्चकृत्यकारी है। परम शिव जब अपनी शक्ति की ओर उन्मुख होते हैं तो केवल इच्छा से ही विभिन्न रूपमय हो जाते हैं–

एष एव हि विज्ञेयो न्याय इच्छां प्रति स्फुटम्।
तदेवं प्रसृतो देवः कदाचिच्छक्तिमात्रके।।

विभर्त्ति रूपमिच्छातः कदाचिज्ज्ञानशक्तितः।
सदाशिवत्वमुद्रेकात् कदाचिदैश्वरीं स्थितिम्।।[67]

वे ज्ञान शक्ति के उद्रेक से सदाशिव और क्रियाशक्ति के उद्रेक से ऐश्वरी तनु को धारण करते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि इच्छा ज्ञान और क्रिया इन तीनों शक्तियों का उस शिव से वियोग कभी नहीं होता–

एवं न जातुचित् तस्य वियोगस्त्रितयात्मना।
शक्त्या निवृतचित्त्वस्य तदभागविभागयोः।
यदा तु तस्य चिद्धर्मविभवामोदजृम्भया।[68]

तात्पर्य यह है कि परम शिव पराशक्ति के साथ नित्य युक्त हैं। अर्धनारीश्वर की कल्पना इसी भाव का द्योतन है जहाँ शिव और शक्ति दोनों भाव शाश्वत विद्यमान हैं। इसलिए विश्व का अभिन्न रूप से भान होता है। क्योंकि लीलामयी महाशक्ति से परे कुछ भी नहीं है।

स्वातन्त्र्यवाद

स्वातन्त्र्य सिद्धान्त या तत्त्व आगम शास्त्र का प्राण है। सर्वोच्च सत्ता परम शिव परम स्वतन्त्र है। परम शिव की इच्छा शक्ति ही स्वातन्त्र्य कहलाती है। अपने इस स्वभाव के कारण वह अपने को चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान, क्रिया नाम पाँच शक्तियों से सम्पन्न रखता है। परम शिव शुद्ध प्रकाश स्वरूप है। प्रकाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता समस्त विश्व उसी में प्रतिबिम्बित है–

इत्येवं सकलपरामर्श विश्रान्तिमात्ररूपं प्रतिबिम्बित–सम स्वतत्त्वभूतभुवनभेदमात्मानं पश्यतो निर्विकल्पतया शाम्भवेन समावेशेन जीवन्मुक्तता अत्रापि पूर्ववत् न मन्त्रादियन्त्रणा काचिदिति।[69]

परम शिव सत् तो वह है ही चित् उसकी अन्तरङ्ग शक्ति है और आनन्द वहिरङ्ग शक्ति। कौलाचार्य इसको विश्वमय मानते है जबकि तन्त्राचार्य विश्वोत्तीर्ण। यही उसका स्वातन्त्र्य है। जगत् परमेश्वर का न तो परिणाम है और न विवर्त, अपितु यह उसका स्वातन्त्र्य रूप है। प्रकाश विमर्शात्मक परम शिव अपने इसी स्वातन्त्र्य के प्रभाव से सदैव सृष्टि, संहार आदि के उन्मुख बना रहता है। परमेश्वर की परमेश्वरता इसी पर अवलम्बित है। त्रिक दर्शन या कश्मीर शैव मत में वह एक ही साथ विश्वमय और विश्वोत्तीर्ण दोनों है। विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय दोनों में अन्य कोई हेतु नहीं है, अपितु उसकी इच्छा ही एक कारण है। वह स्वतन्त्र है जब चाहता है-तत्त्वों के रूप में अपने को विस्तारित करके विश्वमय हो जाता है और जब तरग उठती है तब उसका संहार करके विश्वोत्तीर्ण होकर अद्वय रूप में स्थित हो जाता है। अस्वतन्त्र का कर्तृत्व कभी उत्पन्न नहीं हो सकता-

वस्तुतःसर्वभावनांकर्तेशानःपरःशिवः।
अस्वतन्त्रस्यकर्तृत्वंनहिजातूपपद्यते।।[70]

समस्त विश्व उसके स्वातन्त्र्य का खेल है। अपने स्वातन्त्र्य वश इस विश्व नाटक की रचना उन्होंने की है। यह स्थूल जगत् संविद् रूप परम शिव की आत्म प्रच्छादन क्रीड़ा है-

आत्मप्रच्छादनक्रीडां कुर्वतो वा कथञ्चन्।
मायारूपमितीत्यादि षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपताम्।।
विभ्रद्विभर्ति रूपाणि तावता व्यवहारतः।
यावत् स्थूलं जडाभासं संहतं पार्थिवं घनम्।।[71]

इस क्रीड़ा के द्वारा वह स्वयं को स्वयं से छिपाना चाहता है। सार्वभौम राजा की तरह परमेश्वर ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण

जैसे चाहता है वैसे विभिन्न चेष्टायें करता है। प्रमोदवश वह स्वरूप गोपन और स्वरूप प्रकाशन की क्रियायें करता है–

स्थानानुरूपतोदेहान्देहाकारेणभावना:।
आददत् तेन तेनैव रूपेण प्रविभाव्यते।।[72]

सृष्टि, संहार आदि कर्मो के लिए परम शिव को यदि किसी अन्य उपादान की अपेक्षा होती तो उसका स्वातन्त्र्य व्याहत हो सकता था किन्तु ऐसा है नहीं। दृश्यमान सफल अर्थ समूह शिवात्मक होने के कारण निरूपादान ही है–

चिदात्मैव हि देवोऽन्त:स्थितमिच्छावशाद्बहि:।
योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत्।।[73]

विभिन्न रूप धारण कर अभिनय भी वही कर रहे हैं और स्वयं द्वारा किये जा रहे अभिनय को विभिन्न रूपों में देखकर मुग्ध भी वही हो रहे हैं साथ ही इन सब से परे वे अपने आप में विश्राम कर रहे हैं। सब कुछ करके भी कुछ नहीं करते और कुछ भी न करके सभी कार्यो के वह एकमात्र कर्त्ता हैं। मोक्ष भी शिव रूप है और बन्धन भी शिव रूप है–

बन्धमोक्षौ न विद्येते सर्वत्रैव शिवत्वत:।[74]

वे ही परम भोग और पर त्याग हैं और भोग त्याग से परे भी वहीं हैं। वह सर्वत्र स्वप्रकाश है फिर भी बाहर–भीतर खोजने पर उनका पता नहीं चलता है।

अनन्त महिमामयी शक्तिरूप वह ज्ञानियों के ब्रह्म, योगियों के परमात्मा और भक्तों के भगवान् हैं। मन वाणी के विषय न होते हुए वह सर्वेन्द्रियवेद्य सर्वभावगम्य है। सत्–स्वरूप स्वप्रकाश अर्थात् चित् भी हैं और उनकी इस स्वप्रकाशता का उनको अवभास भी है। यह विमर्श ही उनका स्वातन्त्र्य है। इस स्वातन्त्र्य के कारण ही वे अपनी सत्ता और सर्वशक्तिमत्ता का बोध स्वयं करते रहते

हैं। समस्त विश्व परमेश्वर के प्रकाश के भीतर प्रतिबिम्ब रूप में ही अवभासित होता है–यह विश्व भी इसी विमर्श का परिणाम है। संसार के प्राणियों के भोज्य पदार्थ भी शिव की प्रेरणा से ही उनके उदर में जाते हैं और सुख, दुःख, मोहात्मक फल की सृष्टि करते हैं। यहाँ तक कि मद्य भी शिव की प्रेरणा से ही मद करता है–

अतः कर्मविपाकज्ञप्रभुशक्तिबलेरितम्।
मद्यंसूतेमदंदुःखसुखमोहफलात्मकम्।।[75]

यह विश्व परम सत्ता में नित्य विराजमान है और इस विश्व वर्तमानता का उनको बोध भी होता रहता है। इस बोध के कारण वे सर्वदा पञ्चकृत्य (निग्रह, सृष्टि, स्थिति, संहार और अनुग्रह) करते रहते हैं।[76] अपनी ही इच्छा से अपने ही द्वारा अपने ही स्वरूप को सङ्कुचित करना उनका निग्रह है। फिर विश्व की सृष्टि स्थिति और अपने ही अन्दर संहार कर अपने स्वरूप में पुनः प्रतिष्ठित होना उनका अनुग्रह है। यह सभी कुछ उस परम सत्ता की शक्ति का ही स्फार है–

बहुशक्तित्त्वमस्योक्तं शिवस्य यदतो महान्।
कलातत्त्वपुरार्णाणुपदादिर्भेदविस्तरः।।
सृष्टिस्थितितिरोधानसंहारानुग्रहादि च।
तुर्यमित्यपि देवस्य बहुशक्तित्वजृम्भितम्।।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तान्यतदतीतानि यान्यपि।
तान्यप्यमुष्य नाथस्य स्वातन्त्र्यलहरीभरः।।
महामन्त्रेशमन्त्रेशमन्त्राः शिवपुरोगमाः।
अकलौ सकलश्चेति शिवस्यैव विभूतयः।।[77]

सृष्टि स्थिति आदि इसी परम सत्ता का उल्लास है। इस सृष्ट्यादि कृत्य का न कोई कारण है और न कोई उद्देश्य। यह मात्र

उनका स्वातन्त्र्य या लीला विलास है इसी लीला के कारण वे आणव भाव ग्रहण करते हैं जो कि जीव नाम से जाना जाता है। पत्र्चकृत्य उनका स्वभाव या स्वातन्त्र्य है क्योंकि वे सर्वशक्ति सम्पन्न हैं। लीला करना जिस प्रकार उनका स्वभाव है लीला से परे रहना भी उसी प्रकार उनका स्वभाव है। यह सब उनके स्वातन्त्र्य का माहात्म्य है। आचार्य अभिनवगुप्त पादाचार्य ने परमसत्ता शिव के छः भेद बताए हैं–

भुवनं विग्रहो ज्योतिः द्दं शब्दो मन्त्र एव च।
विन्दुनादादिसंभिन्नः षड्विधः शिव उच्यते।।[78]

भुवन, विग्रह, ज्योति, आकाश शब्द और मन्त्र ये छः भेद हैं। वस्तुतः शिव तो एक ही है। साधना फल के भेद से ये उसके छः रूप कल्पित कर लिए गये हैं। कश्मीर के अद्वैत निष्ठ शैवों के अनुसार एक परम शिव ही नाना प्रकार की विचित्रताओं के साथ सर्वत्र स्फुरित हो रहा है। उस परम सत्ता के अतिरिक्त किसी अन्य स्वतन्त्र पदार्थ की कल्पना भी नहीं की जा सकती–

गतिः स्थानं स्वप्नजाग्रदुन्मेषणनि मेषिणे।
धावनं प्लवनं चैव आयासः शक्तिवेदनम्।।
बुद्धिभेदास्तथा भावाः सत्र्ज्ञाः कर्माण्यनेकशः।
एष रामो व्यापकोऽत्र शिवः परमकारणम्।।[79]

परम शिव ही परम कारण है। उसकी सत्ता स्वतः सिद्ध है–

कर्तरि ज्ञातरि स्वात्मन्यादिसिद्धे महेश्वरे।
अजडात्मा निषेधं वा सिद्धिं वा विदधीत कः।।[80]

शैवागम के अनुसार वह नित्य प्रकाश विमर्श रूप है। इस प्रकार से स्वातन्त्र्यवाद के अन्तर्गत कश्मीर शैवदर्शन में उस परम सत्ता के स्वातन्त्र्य को निरूपित किया गया जिसके अन्तर्गत यह

स्पष्ट किया गया कि वह परम शिव जब जैसा चाहता है सभी कार्य अपने अनुसार सम्पादित करता है। वह पूर्ण स्वतन्त्र है तथा संसार से भिन्न भी है और अभिन्न भी।

प्रतिबिम्ब और आभास

'प्रत्यभिज्ञाहृदयम्' नामक ग्रन्थ के प्रथम दो सूत्रों-**'चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धि हेतुः'**[81] तथा **'स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति'**[82] में इस कश्मीर शैवदर्शन का प्रतिबिम्बवाद सङ्केतित है। सामान्य व्यवहार में बिम्ब होता है जैसे मुख और दूसरा प्रतिबिम्ब होता है-जैसे दर्पण आदि में मुख की छाया। बिना बिम्ब और बिना आधार के प्रतिबिम्ब की कल्पना नहीं की जा सकती है। परम सत्ता एक और अद्वितीय है। इसलिए वह अपने ही ऊपर अपने को स्वातन्त्र्यवश प्रतिबिम्बित करती है। असीम सत् के अन्दर प्रथम स्पन्दन ही चित् है। चित् से दूसरा चित् उत्पन्न होकर प्रथम चित् में अपने स्वरूप को देखता है और आनन्दरूप हो जाता है। यही प्रतिबिम्बन है। लोकव्यवहार में भी हमें आनन्दाभूति तभी होती है जब हम किसी सजीव अथवा निर्जीव प्रतिबिम्ब को देखते हैं। नाना रूपों में दृश्यमान यह समस्त विश्व उत्पत्ति की दृष्टि से उस परम सत्ता का प्रतिबिम्ब है। जिस प्रकार प्रतिबिम्ब आधार से भिन्न कुछ नहीं है उसी प्रकार यह विश्व उस परमसत्ता से भिन्न कुछ नहीं है। परमशिव और जगत् का परस्पर सम्बन्ध दर्पण बिम्ब के समान है जिस प्रकार दर्पण में प्रतिबिम्बित वृक्षादि बिम्ब से अभिन्न होते हुए भी भिन्न से अवभासित होते हैं वैसे ही शुद्ध संवित् स्वरूप परम शिव में प्रतिबिम्बित यह निखिल जगत् परम शिव से अभिन्न होते हुए भी घट-पटादि रूप से भिन्नवत् प्रतीत होता है-

निर्मले मकुरे यद्वद्भान्ति भूमिजलादयः।
अमिश्रास्तद्वदेकस्मिंश्चिन्नाथे विश्ववृत्तयः।।[83]

दर्पण में जिस प्रकार हमारे प्रतिबिम्ब का हमको बोध होता है उसी प्रकार इस स्वसृष्ट विश्व का उस परम सत्ता या शिव को बोध होता रहता है। यह बोध होना ही आभास है। जिस प्रकार महासागर में उत्पन्न अनन्त तरगें आवर्त्त बुदबुद आदि का अनन्त रूपों में बोध होता है उसी प्रकार यह अनन्त विचित्र विश्व उस परम सत्ता में उसी को आभासित होता रहता है।

इस अनन्त वैचित्र्य का उसको आभास या बोध होना भी उसकी लीला ही है। जैसे चित्त के अन्यत्र संलग्न होने पर दर्पण गत अपना प्रतिबिम्ब अपने को ही नहीं दिखाई देता उस प्रकार की स्थिति परम सत्ता की नहीं है। उसमें निहित अनन्त प्रतिबिम्बों का उसे अनवरत आभास होता रहता है। इसलिए जिस प्रकार परम सत्ता नित्य है उसी प्रकार उसके प्रतिबिम्ब और आभास भी नित्य हैं। महेश्वर के सर्जन की दृष्टि से यह दर्शन स्वातन्त्र्यवाद कहलाता है उसकी अभिव्यक्ति या आविर्भाव की दृष्टि से यह आभासवाद कहलाता है। समस्त विश्व अधिष्ठान चित् या संवित् है। चित्र-विचित्र सदा परिवर्तनशील आभास उसी चित् के आविर्भाव मात्र हैं, जो कुछ भी किसी भी रूप में प्रकट है, चाहे प्रमेय के रूप में, चाहे प्रमाता के रूप में, चाहे ज्ञान के रूप में, चाहे ज्ञान के साधन या इन्द्रियों के रूप में, वह सब कुछ उसी परम चित् का भास (प्रकाशन) कुछ सङ्चित रूप में भासन एवं प्रकाशन आभास कहलाता है। सभी प्रकार का आविर्भाव परिसीमित होता है जो कुछ भी विद्यमान है वह आभासों का विन्यास मात्र है।

दर्पणबिम्बे यद्वन् गरग्रामादिचित्रमविभागि।
भाति विभागेनैव च परस्परं दर्पणादपि च।।
विमलतमपरमभैरव-बोधात्तद्वत्विभागशून्यमपि।
अन्योन्यं च ततोऽपि च विभक्तमाभाति जगदेतत्।।[84]

जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में चित्र-विचित्र नगर, ग्राम इत्यादि के प्रतिबिम्ब दर्शन से अभिन्न होते हुए भी परस्पर और दर्पण से भी भिन्न भासित होते हैं, वैसे ही यह जगत् परमशिव के विमल संवित् से अभिन्न होते हुए भी परस्पर और उस संवित् से भिन्न भासित होता है। आभास दर्पण में प्रतिबिम्बित आकारों के समान है जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब उससे भिन्न नहीं किन्तु भिन्न भासित होता है, इसी प्रकार आभास भी शिव से भिन्न नहीं है किन्तु भिन्न भासित होते हैं। जैसे दर्पण में प्रतिबिम्बित नगर, ग्राम, नदी, वृक्ष, इत्यादि यद्यपि दर्पण से अभिन्न हैं तथापि उससे भिन्न भासित होते हैं। इस दर्पण की उपमा में दो अपवाद माननीय है-दर्पण में कोई वाह्य पदार्थ प्रतिबिम्बित होता है। महेश्वर की सार्वभौम चेतना में उसी की ही सृष्टि कल्पना प्रतिबिम्बित होती है कोई वाह्य पदार्थ नहीं। दर्पण में एक वाह्य प्रकाश के द्वारा ही प्रतिबिम्ब सम्भव है, महेश्वर की सार्वभौम चेतना स्वयं अपना प्रकाश है, वह सब प्रकाशों का प्रकाश है। उसे किसी वाह्य प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। दर्पण अचेतन है उसे अपने शरीर के प्रतिबिम्बों का बोध नहीं है किन्तु महेश्वर तो चेतन हैं, उसकी चेतना में जो प्रतिबिम्बवत कल्पनाएँ प्रकट होती है उनका उसको सम्पूर्ण बोध रहता है। आभास जो पशु या परिच्छिन्न जीवों को वाह्य रूप में प्रतीत होते हैं, परम चेतना की कल्पनाओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं है-

अन्तर्विभाति सकलं जगदात्मनीह
यद्वद्विचित्ररचना मकुरान्तराले।
बोधः पुनर्निजविमर्शनसारयुक्त्या
विश्वं परामृशति नो मकुरस्तथा तु।।[85]

जिस प्रकार चित्र-विचित्र पदार्थ दर्पण के भीतर प्रकट होते हैं वैसे ही परम संवित् में जगत् प्रकट होता है।

कश्मीर शैवदर्शन में वर्णित आभासवाद अन्य दर्शनों के आभास की तरह नहीं है। इस दर्शन की दृष्टि में जगत् मिथ्या नहीं है अपितु पूर्णरूप से यथार्थ है। परम शिव दर्पण के समान अपने में समस्त जगत् को अवभासित करता है। यह विचित्र विश्व परम शिव के अन्दर अभिन्न भाव से स्थित है।

शैवदर्शन का यह बिम्बप्रतिबिम्ब भाव लोक में प्रचलित बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से विलक्षण है। लोक में प्रतिबिम्बित पदार्थ बिम्ब से पृथक् हुआ करता है। प्रतिबिम्बित पदार्थ आधेय होता है, बिम्ब उसका आधार हुआ करता है, किन्तु इस दर्शन में बिम्ब भी शिव है और प्रतिबिम्ब भी शिव है। विश्वमय और विश्वोत्तीर्ण दोनों रूपों में शिव ही एक तत्त्व है। यहाँ बिम्ब के बिना ही प्रतिबिम्ब होता है। जगत् भी वस्तुतः शिव ही है, अतः जगत् यथार्थ है। स्वातन्त्र्य शक्ति के माहात्म्य से जगत् रूप प्रतिबिम्ब स्वतःप्रादुर्भूत होता है। संसार भी पारमार्थिक सत् है।

संसार की यह सत्ता संसार रूपता में नहीं है अपितु शुद्ध संवित् रूप में है। शुद्ध संवित्–रूप परमशिव परमार्थतया सत्य है। यह संसार परमशिव के अन्दर संवित् अवस्था में ही रहता है। अतः संसार भी सत्य ही है। शिव का स्वातन्त्र्य भी सत्य है। उसकी लीला भी सत्य है यह अविद्या के समान मिथ्या नहीं है।

इस प्रकार यह सिद्धान्त जो जगद्विषयक है यह यथार्थवादी आभासवाद कहलाता है। यथार्थवादी इसलिए कहलाता है क्योंकि जगत् विश्वरूप होने के कारण वास्तविक है और आभास इसलिए है क्योंकि भिन्न सा अवभासित होता है।

सामरस्य सिद्धान्त

कश्मीर शैवदर्शन की मान्यता के अनुसार परतत्त्व प्रकाश विमर्श का सामरस्य रूप है। चेतना के अवभासात्मक रूप का

नाम प्रकाश है और विमर्श उसका स्वभाव है। प्रकाश ज्ञान है और विमर्श ज्ञान की क्रिया है। परम शिव शुद्ध प्रकाश स्वरूप है। वह सदा सर्वदा सब स्थितियों में स्वयं प्रकाशित होता रहता है। चेतना का स्वभाव ही है स्वयं प्रकाशित होना। जड़ पदार्थों का जो आभास होता है वह भी चेतना के प्रकाश से ही होता है। जीव और जगत् के रूप में स्वयं प्रकाश परम शिव ही प्रकाशित हो रहा है। जहाँ प्रकाश है वहीं विमर्श भी है। जिसे अपना आभांस या प्रकाश होता है उसे साथ ही अपने अस्तित्व की भी प्रतीत होती है। परमेश्वर प्रकाश विमर्शात्मक है। विमर्श कोई प्रकाश से भिन्न वस्तु नहीं है। ये दोनों ओत-प्रोत होकर सदा साथ रहते हैं। प्रकाश इसलिए प्रकाश है क्योंकि उसका स्वभाव विमर्श है।

स्वभावमवभासस्य विमर्शं विदुरन्यथा।
प्रकाशोऽर्थोपरक्तोऽपिस्फटिकादिजडोपमः।।[86]

विमर्श की विमर्शता भी प्रकाश के कारण है। ये दोनों अभिन्न हैं। परम तत्त्व उन्हीं प्रकाश और विमर्श का सामरस्य रूप है। सब रूपों में यही आभासित होता है।

परिपूर्णता का सिद्धान्त

शुद्ध संविद् रूप परम शिव सदा सर्वत्र समस्त अवस्थाओं में परिपूर्ण ही रहता है। वह कभी घटता-बढ़ता नहीं है न कभी अशुद्ध होता है। देशकृत कालकृत और आकारकृत कोई सङ्कोच भी वहाँ सम्भव नहीं है। जड जगत् और चेतन जीवों के रूप में वह संविद् रूप परमशिव ही परिवर्तित होकर फैल गया है। परमार्थ अवस्था में तो वह विश्वोत्तीर्ण है किन्तु व्यवहार दशा में वही विश्वमय हो गया है, किन्तु विश्वोत्तीर्ण और विश्वमय इन दोनों अवस्थाओं में उसकी परिपूर्णता में कोई अन्तर नहीं आता। यह संसार संविद् रूप

है, और संविदरूप शिव में ही रहता है क्योंकि अवभासन चेतना का स्वभाव है, अचेतन का नहीं। अतः जड जगत् भी संविद् रूप ही हुआ। जिस प्रकार दूध में मक्खन, मलाई, पनीर, घी आदि रहते हैं, उसी प्रकार यह संसार भी परम शिव में रहता है। ये वस्तुएँ दूध में अपने-अपने व्यक्तिगत रूप में अलग-अलग नहीं रहती हैं अपितु दूध की बनी हुई एकमात्र दूध की ही दशा में वहाँ रहती हैं। उसी तरह से सम्पूर्ण संसार उस शुद्ध संवित् में संवित् बना हुआ ही संवित् ही के रूप में सदैव रहता है।[87] इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि परम तत्त्व एक परिपूर्ण शुद्ध और असीम तत्त्व है।

स्पन्द सिद्धान्त

परम शिव के चलनात्मक स्वभाव को कश्मीर शैवदर्शन में स्पन्द कहा जाता है। स्पन्द शब्द का साधारण अर्थ है-गति, हलचल या धड़कन। परमशिव का प्रकाश उसका अविचल पहलू है, जिसके कारण उसे शिव कहा जाता है। विमर्श उसका चलनात्मक पहलू है जिसके द्वारा वह सृष्टि क्रिया में प्रवृत्त है। परम शिव मानों चेतना का एक सागर है उसमें आनन्द का स्पन्दन सदैव होता रहता है। परम शिव का क्रियात्मक स्वभाव ही इस दर्शन में स्पन्द कहा जाता है। स्पन्द को स्वातन्त्र्य की एक छलकन समझना चाहिए। परम शिव आनन्द के सागर हैं जो सर्वथा परिपूर्ण हैं। उसमें जब स्पन्दन या छलकन होती है तो आनन्द की जो बूँदें इधर-उधर बिखरती हैं तो मानों वह अनन्त लोकों और ब्रह्माण्डों के रूप में परिवर्तित हो जाती है। आचार्य उत्पल ने इस स्पन्द को परमेष्ठी का स्फुरण रूप हृदय कहा है।

सास्फुरत्तामहासत्तादेशकालाविशेषणी।
सैषा सारतया प्रोक्ता हृदयं परमेष्ठिनः।।[88]

परम शिव के अचल स्वभाव और स्पन्दात्मक स्वभाव में आघात रूप विरोध सा प्रतिभासित होता है। किन्तु परमार्थतः विरोध यहाँ दूषण नहीं अपितु भूषण बन गया है। स्पन्दन अचल शिव का मानों चल स्वभाव है।

इस प्रकार अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि कश्मीर शैवदर्शन के अपने कुछ सिद्धान्त हैं जो कि अन्य दर्शनों से इस दर्शन की विलक्षणता को द्योतित करते हैं। इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त शिवाद्वयवाद तथा द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत इत्यादि तत्त्वों पर भी विचार किया गया है।

इस दर्शन शास्त्र में कुल तत्त्वों की सङ्ख्या 36 (छत्तीस) स्वीकार की गयी है जो दर्शन क्षेत्र में सबसे अधिक मानी जाती है। मल के अभाव और न्यूनाधिक भाव को लेकर इन 36 (छत्तीस) तत्त्वों के विकास को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–शुद्ध सृष्टि के अन्तर्गत पाँच तत्त्व–शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर, शुद्धविद्या है। शुद्धाशुद्धसृष्टि के अन्तर्गत–माया, काल, कला, नियति, विद्या, राग, पुरुष ये तत्त्व हैं। अशुद्धि सृष्टि के अन्तर्गत–अव्यक्त, महत्, समष्टि अहङ्कार, समष्टि मन, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, रसना, स्पर्शन, वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी ये तत्त्व हैं। इन्हीं तत्त्वों का तथा सिद्धान्तों का इस कश्मीर शैवदर्शन में समाहित करते हुए इन पर सम्यक् विचार किया गया है तथा परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मानव को किस प्रकार के कर्मों को करना चाहिए इसका भी उल्लेख इस दर्शन में किया गया है। यह दर्शन मानव के लिए अत्यन्त ही कल्याणप्रद है।

शैवागम में बिम्बप्रतिबिम्बवाद

कश्मीर शैवदर्शन परम्परा में अन्य दर्शनों के समान ही मूलभूत तत्त्वों तथा सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। इसमें निहित सिद्धान्त अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों से कुछ विलक्षण हैं। अभिनव गुप्त पादाचार्य ने अपने ग्रन्थ तन्त्रालोक के तृतीयमाह्निकम् में इस बिम्बप्रतिबिम्बवाद सम्बन्धी सिद्धान्त का निरूपण किया है। इस सिद्धान्त का कश्मीर शैवदर्शन में अत्यधिक महत्त्व परिलक्षित होता है। इसका वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है–उस परम शिव (परमेश्वर) के अनुत्तर पद का जो कि सभी उपायों में श्रेष्ठ उपाय के रूप में स्वीकृत है उसके स्वरूप के विषय में वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह भैरव का परम तेज जो प्रकाशमात्र कहा गया है अर्थात् उसी के प्रकाश से सब कुछ प्रकाशित होता है तथा वह स्वतन्त्रता मात्र के गुण से युक्त है–इस स्वतन्त्रता सम्बन्धी गुण के विषय में यह बताया गया है कि वह स्वयं प्रकाश है उसी के द्वारा सभी को प्रकाश प्रदान किया जाता है अर्थात् जगत् की चराचर वस्तुएँ उसी से प्रकाशित होती हैं, वह अपने से अभिन्न रूप में अवभासित होता है। उसका कोई व्यतिरेकी नहीं है यह संसार सद्रूप में भासित हो रहा है इसलिए यह परमेश्वर स्वात्मप्रकाश में बिना प्रतिबन्ध के विराजमान है अतः वह सृष्टि संहार के आडम्बर का प्रदर्शक है। विश्व वैचित्र्य का उल्लास होने पर भी प्रकाश मात्र स्वभाव वाले अपनी आत्मा में इसका कुछ अधिक उत्पन्न नहीं होता और इसीलिए इसके द्वारा विश्व की चित्प्रतिबिम्बता है।

जिस प्रकार दर्पण आदि में परस्पर व्यावृत्त रूप प्रतिबिम्बित आकार विशेष उस (दर्पण) से अभिन्न होते हुए भी भिन्न जैसे भासते हैं उसी प्रकार परमेश्वर तथा जगत् की स्थिति है। जिस प्रकार निर्मल दर्पण में भूमि, जल आदि अलग-अलग आभासित होते हैं उसी प्रकार एक चित्स्वरूप परमेश्वर में विश्व की वृत्तियाँ भासित होती हैं। वही चित् आदि नेत्र, दर्पण, आकाश और जल में एक समान भासित होती है। रूप के निर्मल हो जाने पर रूप का आभास होता है। पृथ्वी, जल तथा तेज तीन का ही रूप होता है। पार्थिव दर्पण आदि में, जलीय शान्त जलाशय आदि में और तेजस् चक्षु आदि में रूप नामक स्वच्छ गुण है यह सन्निवेश का संस्थान रूप है इसलिए उसका प्रतिबिम्बन ही वहाँ अवभासित होता है न कि स्पर्श आदि।

वह आनन्द के स्थान आदि रूप कन्द आदि आधारों में स्पर्श आदि के सम्भव होने के कारण सङ्क्रान्त होता है। इसलिए जो स्वच्छ गुण जहाँ है वहाँ सङ्क्रान्त होता है। इस कथन की तारतम्यता को द्योतित करते हुए एक ऐसी नायिका का दृष्टान्त देते हैं जो अपने प्रियतम को प्रच्छन्न रूप से प्रेम करती है उस प्रियतम के प्रतिबिम्ब जो दर्पण में स्थित है उसमें स्तनों से भी यदि स्पर्श करती है फिर भी उसे किसी भी प्रकार की तृप्ति प्राप्त नहीं होती है। इसका कारण यह है दर्पण का स्पर्श उतना निर्मल नहीं होता है जितना रूप निर्मल होता है-यह निर्मलता अत्यन्त सघन सजातीयमात्र के साथ रहती है। कहने का आशय यह है कि नायिका जिसके प्रति स्नेह करती है परन्तु उसी प्रियतम के रूप का प्रतिबिम्ब दर्पण में दिखाई देने पर नायिका द्वारा स्पर्शन आदि से किसी भी प्रकार से तृप्ति प्राप्त नहीं होती क्योंकि जो निर्मलता आदि गुण प्रियतम के रूप के साथ सजातीय मात्र से जुड़े हुए हैं वह निर्मलता आदि उसके प्रतिबिम्ब में नहीं होती है। निर्मलता के सन्दर्भ में कहा गया है कि

स्वप्रकाश रूप धर्म को न छोड़ने वाले तथा अपने प्रति अभेद युक्त होते हुए भी भिन्न के प्रदर्शन की जो क्षमता है वही नैर्मल्य माना जाता है। अर्थात् दर्पण में दिखायी देने वाला प्रतिबिम्ब बिम्ब सदृश दिखने पर भी उसमें नैर्मल्य आदि निहित नहीं रहता है। यह नैर्मल्य मुख्य तथा अमुख्य रूप से दो प्रकार का है। संविद् के एकमात्र स्वामी परमेश्वर जो कि परमशिव नाम से जाने जाते हैं उसका नैर्मल्य मुख्य माना जाता है तथा उसकी इच्छा से अशांशिक रूप में कहीं-कहीं अमुख्य नैर्मल्य है। संवित् से संलग्न ही विश्व का ज्ञान होता है इसलिए यह संवित् सर्वथा स्वच्छ है। जो भावों का प्रतिहन्ता शरीर है वह मायात्मक होता है। उनका ही शुद्ध विद्यामय शरीर अप्रतिघाती होता है। इसलिए दोनों स्वरूप वाले अवभासों को प्रकाशित करते हुए वरदानी परमेश्वर बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से सर्वत्र अवभासित हो रहे हैं। यह उभयाकार इसलिए है क्योंकि यह परमेश्वर प्रतीघाति अप्रतीघाति रूप आभासमात्र सार वाला ही है न कि तत्त्व वाला है। इस कारण एक ही यह महादेव स्वातन्त्र्योपाधि में स्थित होकर बिम्बप्रतिबिम्बोदयात्मक दो रूपों में भासित होता है। जो यह कहता है कि नेत्रों के तेज स्वच्छ होने के कारण दर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं और वे ही तेज लौटकर अपने दृष्टा के मुख को ग्रहण करते हैं इस मत को मानने वाले से यह प्रश्न किया जा रहा है कि देह से भिन्न स्थलों में जो चाक्षुष तेज है उस तेज का अधिष्ठाता प्रमाता उसी अपने ही तेज से मुख का ज्ञान कर लेता है, फिर दर्पण का कोई वहाँ प्रयोजन नहीं होता है अर्थात् खुले नेत्र वाले प्रमाता का देह के बाहर गया हुआ जो चाक्षुष तेज उसी लौटे हुए तेज के द्वारा अपने अधिष्ठाता आत्मा को यदि अपने मुख का ज्ञान हो जाता है-ऐसी स्थिति में दर्पण का कोई प्रयोजन नहीं होता है। ग्राहक बनने वाले प्रत्यावृत तेज के द्वारा अपने ही मुख में अपना रूप दिखायी देने लगता है न कि दर्पण में। अपने मुख में 'यह मेरा

मुख है' ऐसी प्रतीति स्पर्श होनी चाहिए न कि स्पृश्य से भिन्न केवल वेद्यस्वरूप इस वेद्य का रूप है, ऐसी प्रतीति होनी चाहिए जैसी कि होती है। रूप प्रतिबिम्ब में तो रूप स्पर्श से भिन्न ही प्रतीत होता है। अग्नि के प्रतिबिम्ब अग्नि के प्रतिबिम्ब को धारण करने वाला दर्पण कभी ऊष्ण नहीं देखा गया उसके रूप का अवभास होने पर जैसे उसके धर्मसन्निवेश का अवश्य भान होता है उसी प्रकार उसके अव्यभिचारी स्पर्श का भी भान होता यदि अपने मुख का ही ग्रहण होता है तो भ्रान्ति के अभाव के कारण इसे बिम्ब से भिन्न प्रतिबिम्ब नामक दूसरी वस्तु माननी चाहिए। अतः इस सन्दर्भ में कहा गया है-वह प्रतिबिम्ब स्पर्श, गन्ध आदि से शून्य केवल रूप संस्थान ही है। इसलिए यह ठीक है कि वह प्रतिबिम्बित भी वस्तु ही है। स्पर्श आदि से शून्य होने के कारण केवल उसका रूप संस्थान उस दर्पण आदि में प्रतिबिम्बित सद्वस्तु ही है, न कि अवस्तु। यहाँ यह शङ्का आती है कि स्पर्श आदि का तिरोहित होना क्या वस्तु माना जा सकता है, इस सन्दर्भ में कहा गया है-स्पर्श आदि का तिरोभाव ग्राह्यता के अभाव के कारण है और ग्राह्यता का अभाव इसलिए है कि उस विषय में कोई प्रमाण नहीं है और वह प्रमाणाभाव अर्थ का स्पर्श आदि की स्थिति न होने से है। इसलिए इस प्रतिबिम्ब का गुरुत्व आदि धर्म भी अनुभूत नहीं होता है। वह दर्पण में नहीं रहता। उस रूप संस्थान के दर्शन में वह दर्पण उपाय है। कहने का आशय यह है कि यदि इस प्रतिबिम्बित रूप संस्थान मात्र का स्पर्श आदि भी होता तो उसका गुरुत्व आदि धर्म भी भासित होता। दर्पण में स्पर्श आदि स्थित नहीं है।

जो यह दर्पण प्रतिबिम्ब से भिन्न रूप में भासित नहीं होता इस कारण यह आधार कहा जाता है। दीप, नेत्र एवं संविद् उस आभास के क्रमिक उपाय हैं। चूँकि यह प्रतिबिम्ब उस दर्पण से भेदपूर्वक

अलग भासित नहीं होता इसलिए तिल में तेल की भाँति व्याप रूप में यह इसका आधार कहा गया है। यदि दर्पण के सन्निहित हो पर भी प्रतिबिम्ब के उत्पन्न होने पर भी दीपक के बिना अन्धकार उस प्रतिबिम्ब नहीं देखा जा सकता है तथा कोई अन्धा व्यक्ति नेत्र के बिना दर्पण में प्रतिबिम्बित होने पर भी प्रकाश होने पर अन्धे के लिए उसका व्यवहार नहीं होता अतएव केवल अवभास होना भी प्रतिबिम्ब का तत्त्व है। दीपक चक्षुरिन्द्रिय और ज्ञान काठिन्य नहीं है। सब प्रकार से वे निर्मल हैं। इसलिए आभास प्रतिबिम्ब दर्पण के समान पृथक् नहीं दिखायी देता। दीप आ अपने में प्रतिबिम्ब के ग्रहण की सहिष्णुता रखते हैं। प्रकाश दर्प के समान पृथक् नहीं है क्योंकि दीप आदि में कठिनता का अभा है। संवित् सर्वतः निर्मल होने के कारण स्वप्रकाश है इसलिए उस वेद्यत्व का गन्ध मात्र भी नहीं है। देवाधिदेव ने मूढ़ों के बोध क वृद्धि के लिए इस बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव को स्पष्ट किया है। य प्रतिबिम्ब भी वस्तु है। यह दर्पण देश से अन्य स्थल में नहीं रहत इतना ही पर्याप्त नहीं है। यह प्रतिबिम्ब प्रतिघाती नहीं है। स्वतन् नहीं स्थायी और अस्थायी भी नहीं है। यह किसी स्वच्छ तत्त्व क महिमा है। अर्थात् यह प्रतिबिम्ब वस्तु है क्योंकि प्रतिभासित होत है। जो प्रतिभात होता है वह अप्रतिभात नहीं होता। इसमें को बाधक प्रत्यय भी नहीं है क्योंकि उत्तरकाल में उसका उदय नह होता। स्वच्छ दर्पण आदि का ही यह प्रभाव है कि वस्तु अवस्तु से विलक्षण आभास मात्र तत्त्व वाला यह प्रतिबिम्ब भासित होत है। प्रतिबिम्ब का दर्पण से पृथक् कोई देश नहीं, कोई रूप नहीं, समय-योग नहीं, परिणाम नहीं, अन्योन्य सम्बन्ध भी नहीं, न उसकी हानि है न सघनता। वह अवस्तु भी नहीं और उसका अपना कोई स्थायी तत्त्व नहीं। प्रतिबिम्ब दर्पण आदि से भिन्न स्वतन्त्र रूप में पृथक् सत्ता को नहीं प्राप्त करता है। इसलिए दर्पण के अतिरिक्त

इस प्रतिबिम्ब का कोई पृथक् स्थान नहीं है। दर्पण के बिना इस प्रतिबिम्ब का कोई रूप हीं नहीं है। इससे यह द्योतित होता है कि यह विश्व संवित् तत्त्व में दर्पण प्रतिबिम्ब न्याय से स्थित है न कि उससे भिन्न बाह्यरूप में वस्तुसत् है इसलिए उसके प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

इस प्रकार इस प्रतिबिम्ब सिद्धान्त के प्रदर्शित होने पर शब्द का जो प्रतिबिम्ब है वह प्रतिश्रुत्का कहलाता है। यह शब्दज शब्द नहीं है क्योंकि यह उसी वक्ता के द्वारा आती हुई रूप में सुनाई पड़ती है और दूरस्थ लोग शब्द को नहीं सुनते। यह प्रतिश्रुत्का शब्दज शब्द इसलिए भी नहीं है क्योंकि पिठर (ढक्कन) आदि के आच्छन्न अंश के विशिष्ट छिद्रों का आकाश से सम्बन्ध होने पर विचित्र ध्‍वनि होने से (प्रतिध्वनि) मुख आदि की भाँति शब्द का प्रतिबिम्ब है। वस्तुभूत शब्दजातीयत्व की अनुपलब्धि के कारण यह (प्रतिध्‍वनि) शब्दज शब्द नहीं है। इसलिए जैसे मुख आदि का प्रतिबिम्ब दर्पण आदि में है इसी प्रकार इस मुख्य शब्द का आकाश में भी (प्रतिबिम्ब) रहता है–इस शब्द का प्रतिबिम्ब मुख आदि के समान। न केवल वस्तुभूत मुख्य शब्द का सजातीय न होने से प्रतिबिम्ब है बल्कि रूप प्रतिबिम्बजातीय होने से भी है ऐसा ज्ञान होता है उसी प्रकार किसी के द्वारा कहा गया सुन रहा हूँ' यह भान भी होता है। चूँकि प्रतिबिम्ब का नियमपूर्वक बिम्ब सामुख्य होता है इस कारण उसके बीच में रहने वाले लोग प्रतिशब्द को सुनते हैं। प्रतिबिम्ब का ज्ञान मुख्य ज्ञान के बिना भी होता है। दर्पण में अनुरागमय पुरुष अपने पीछे स्थित प्रिया के शरीर को दर्पण में देखता ही है। उस प्रकार के दर्पण से अभेद होने के कारण ही सामुख्य कहा जाता है। इसलिए कूप आदि वर्त्तन के आकाश में प्रतिबिम्बित मुखाकाश दूसरे वक्ता के समान शब्द युक्त प्रतीत होता है। जिस प्रकार दर्पण

के पीछे भाग में स्थित व्यक्ति अपने मुख को नहीं देखता वैसे उस प्रकार के आकाश के पीछे स्थित व्यक्ति ध्वनि को नहीं सुनता है। अप्रकट शब्द प्रतिध्वनित नहीं होता। उसकी अभिव्यक्ति और प्रतिध्वनि एक साथ होती है। दूसरे क्षण में प्रतिबिम्बन और प्रतिश्रुति एक साथ होती है। हमें हाथ और उसकी छायारूप का निश्चय समानकाल में होता है। आभास ही सभी वस्तुओं का व्यवस्थापक है। बिना उसके पदार्थों की सत्ता असत्ता का निश्चय नहीं होता है। आनन्दपूर्ण आकाश में शब्द रहता है उसमें प्रतिबिम्बित होता है। इसी प्रकार स्पर्श वाले स्थान में दृढ़ आघात शूल शीत आदि से उत्पन्न स्पर्श भी निर्मल होता है। यही स्पर्श दूसरे में रहकर प्रतिबिम्बित होने से अपने शरीर को हर्षातिरेक से आन्दोलित कर देता है। यह सिद्धान्त कश्मीर शैवदर्शन में अभिनवगुप्तपादाचार्य द्वारा वर्णित बिम्बप्रतिबिम्बवाद के नाम से जाना जाता है।

सम्पादन में प्रयुक्त 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद' की मातृका का परिचय

श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्य द्वारा लिखित यह 'मातृका' भण्डारकर ओरियण्टयल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पुणे के हस्तलिखित सङ्ग्रहालय से प्राप्त हुई है। इसका परिचय इस प्रकार है–

मातृका सङ्ख्या–469 वर्ष 1875.76

लिपि–देवनागरी

आधार–देशी कागज[1]

इस मातृका का उल्लेख New Cataloques Cataloqurum में प्राप्त होता है।[2]

मातृकारम्भः

नमः श्री गुरवे।

प्रकाशमात्रं यत्प्रोक्तं भैरवीयं परं महः।

तत्र स्वतन्त्रतामात्रमधिकं प्रविविच्यते।।1।।

---

1 A Catalogue of the callections of Manusoripts Diposited in the Deccan College. By Shridhar R. Bhandarkar, Bombey 1888. Page-100 Report XXX.

2 New Catalogus Cataloguram, Volumme No. Fourteen, P.3

यगाद्विश्वं परामृशति नो मकुरस्तदातु। प्रकाशमानमिति प्राधान्यात्। न हि निर्विमर्शः प्रकाशः समस्ति उपपद्यते वा अधिकमिति कल्पनामात्रेण नहि वस्तुतो वस्तुनः स्वभावोतिरिच्यते तथा त्वे वा स स्वभाव एव न स्यात्।

अन्तिम-पुष्पिका

न च भातमभातभवतीत्युक्तं बहुशः अतएव चास्या नावस्तुत्वमित्याह न च वस्तुहानिरिति सर्वैषामेवार्थानां प्रतिभासादितिभावः एवमपि वस्तुत्वोपपादकमल्पमपि निजं तथ्यं रूपं नास्तीत्याह न च किमपि सारं निजमिति इत्येवमभासमात्रसारं प्रतिबिम्ब सतत्त्वं वाह्यार्थवादिनोपि निश्चितमेव द्वैतप्रथात्मकं सत्रकुचितं ज्ञानं शाम्यतामित्येतदर्थं दर्पणविधिं कुड्यादि वैलक्षण्येन प्रतिबिंबसहिष्णुवस्तुप्रकारं निरदिशन्निर्दिष्टवान् एवं च सत्ययमर्थः प्रदर्शितो भवति यद्विश्वमिदं संविदि दर्पणप्रतिबिम्बन्यायेनावस्थितं न तु तदतिरिक्ततया वहीरूपत्वेन वस्तुसदिति न तत्राभिनिवेष्टव्यम्। इति श्री तन्त्रालोके बिम्बप्रतिबिम्बवादः सम्पूर्णः।

अभिनवगुप्तकृतः 'बिम्बप्रतिबिम्बवाद'
सानुवाद–सम्पादन

प्रकाशमात्रं यत्प्रोक्तं भैरवीयं परं महः।
तत्र स्वतन्त्रतामात्रमधिकं[1] प्रविविच्यते।।1।।

यगाद्विश्वं परामृशति नो मकुरस्तदा तु। प्रकाशमानमिति प्राधान्यात्। न हि निर्विमर्शः प्रकाशः समस्ति उपपद्यते वा अधिकमिति कल्पनामात्रेण नहि वस्तुतो वस्तुनः स्वभावोऽतिरिच्यते तथात्वे वा स स्वभाव एव न स्यात्।।1।।

यः प्रकाशः स विश्वस्य प्रकाशत्वं प्रयच्छति।
नचतद्व्यतिरेक्यस्तिविश्वंसद्वावभासते।।2।।

प्रयच्छति स्वात्मैकात्म्येनावभासयतीत्यर्थः। नहि विश्वं नाम प्रकाशमानत्वादतिरिक्तं किञ्चित्सम्भवति[2] तदतिरेकाभ्युपगमे ह्यस्य प्रकाशमानत्वायोगाद्भानमेव न स्यात्तदाह न चेत्यादि वा शब्दोऽभ्युपगमे।।2।।

अनुवाद–भैरव का परम तेज जो प्रकाशमात्र कहा गया था उसमें उसके स्वतन्त्रता मात्र अधिक (गुण) का विवेचन किया जा रहा है।।1।।

अनुवाद–जो (स्वयं) प्रकाश है वह सबको प्रकाश प्रदान करता है। उसका कोई व्यतिरेकी (=अप्रकाश) नहीं है। यह विश्व सद्रूप में भासित हो रहा है।।2।।

1. स्वतंत्रतामात्रमधिकं, 2. किंचितसंभवति

अतोऽसौ[1] परमेशानः स्वात्मव्योमन्यनर्गलः।
इयतः सृष्टिसंहाराडम्बरस्य प्रदर्शकः[2]।।3।।

ननु यद्येवं तर्हि प्रकाश एव प्रकाशेतेति विश्वस्यावभास एव न स्यादथ च भासते विश्वमित्याशङ्क्याह[3] अतोऽसाविति। अत इति प्रकाशातिरिक्तस्य विश्वस्य भावनायोगात् एवं विश्ववैचित्र्योल्लासेऽपि प्रकाशमात्रस्वभावे स्वात्मन्यस्य नाधिकं किञ्चिज्ज्ञातमिति[4] कटाक्षयितुमत्र व्योम्ना रूपणं कृतं स्वात्मव्योमनीति।।3।।

निर्मले मकुरे यद्वद्भान्ति[5] भूमिजलादयः।
अमिश्रास्तद्वदेकस्मिंश्चिन्नाथे विश्ववृत्तयः।।4।।

यथाहि दर्पणादौ परस्पर व्यावृत्तात्मानः प्रतिबिम्बिता[6] आकारविशेषास्ततो नातिरिक्तत्वेऽप्येतिरिक्ता इव भासन्ते तद्व दिहापीति तदाह निर्मले इत्यादि।।4।।

अनुवाद–इसलिए यह परमेश्वर स्वात्माकाश में बिना किसी नियन्त्रण के विद्यमान है। इसलिए वह सृष्टि संहार के आडम्बर का प्रदर्शक है।।3।।

अनुवाद–जिस प्रकार निर्मल दर्पण में भूमि जल आदि अलग-अलग आभासित होते हैं उसी प्रकार एक चित्स्वरूप परमेश्वर में विश्व की वृत्तियाँ (व्यवहार) अलग-अलग भासित होती हैं।।4।।

1. अतोसौ, 2. प्रवर्तकः, 3. विशवमित्याशंक्याह, 4. किंचितज्ञातमिति, 5. यद्वद्भांति, 6. प्रतिबिंबिता

सदृशं[1] भाति नयनदर्पणाम्बरवारिषु[2]।
तथाहि निर्मले रूपे रूपमेवावभासते।।5।।

अम्बरेति[3] अम्बरस्थं[4] नातितीव्रं सौरं चान्द्रं[5] वा तेजः तत्र हि छायापुरुषोपदेशविद्भिः शरीरसंस्थानप्रतिबिम्बं[6] दृश्यते यदाहुः नभःस्थे च प्रतिबिम्बयोग[7] इति एतदेव दर्शयति तथाहीति।।5।।

प्रच्छन्नरागिणी कान्तप्रतिबिम्बितसुन्दरम्[8]।
दर्पणं कुचकुम्भाभ्यां[9] स्पृशन्त्यपि[10] न तृप्यति।।6।।

गुरुसन्निधानादेरन्तरायप्रधानत्वाद्दर्पणप्रतिबिम्बद्वारेण[11] कान्तदर्शनमिच्छन्ती।।6।।

नह्यस्पर्शोऽस्य[12] विमलो रूपमेव तथा यतः।
नैर्मल्यं चातिनिविडसजातीयैकसगंति[13]।।7।।

अतिशयेन निविडा विजातीया भावादकलुषिता ये सजातीयाः यथा दर्पणे रूपपरमाणवः तेषामेका विजातीया भावान्निःसहाया या सगतिर्नैरन्तर्येणावस्थानात्स्थपुरत्वादि[14] परिहारेणश्लक्ष्णतात्मसंहतत्वं तदेव नैर्मल्यं। नैर्मल्यं नाम किमुच्यते इत्याह वैशल्यं चेति।।7।।

अनुवाद–(वही चित् आदि) नेत्र, दर्पण, आकाश और जल में एक समान भासित होती है। रूप के निर्मल हो जाने पर (ही) रूप का (प्रतिबिम्ब रूप) आभास होता है।।5।।

अनुवाद–प्रच्छन्न रूप से प्रेम करने वाली (नायिका) प्रियतम के प्रतिबिम्ब से सुन्दर दर्पण को बड़े स्तनों से छूने पर भी तृप्त नहीं होती है।।6।।

अनुवाद–क्योंकि इस (दर्पण) का स्पर्श उतना निर्मल नहीं है जितना रूप। क्योंकि निर्मलता अत्यन्त सघन सजातीय मात्र के साथ रहती है।।7।।

1. सदृशे, 2. नयनदर्पणांबरवारिषु, 3. अंबर, 4. अंबरस्थं, 5. चांद्रं, 6. प्रतिबिंब, 7. प्रतिबिंब, 8. प्रच्छन्नरागिनी कांतप्रतिबिंबितसुंदरं, 9. कुचकुंभाभ्यां, 10. स्पृशंत्यपि, 11. प्रतिबिंबद्वारेण, 12. नह्यस्पर्शोस्य, 13. संगति, 14. संगतिर्नैरंत–र्येणावस्थानात्स्थपुरत्वादि

स्वस्मिन्नभेदाद्भिन्नस्य दर्शनक्षमतैव[1] या।
अत्यक्तस्वप्रकाशस्य नैर्मल्यं तद्गुरूदितम्।।8।।

तदेव प्रकाशान्तरेणापि व्याचष्टे स्वस्मिन्नित्यादिना। अत्यक्तः प्रतिबिम्बितेऽपिभावान्तरे[2] तस्याविकलस्यैव विभासादतिरोहितः स्वप्रकाशो यस्य दर्पणादेः स्वात्मन्यभेदमवलम्ब्य यद्भिन्नस्य भिन्नदेशस्थस्य प्रतिबिम्बार्पकस्य[3] पर्वतादेर्दर्शनं गर्भीकृतान्यार्थत्वात्प्रकटीकरणं नहि दर्पणदेशादण्डमात्रेऽपि[4] बाह्यदेशे प्रतिबिम्बं[5] भवतीति भावः। तत्र या कमता कुड्यादि वैलक्षण्येन प्रतिबिम्ब ग्रहणसहिष्णुता[6]तदेवनैर्मल्यं।नचेत्स्वोपज्ञामेवास्माभिरुक्तमित्याह गुरूदितमिति गुरुणा श्रीमदुत्पलदेवेन निरूपितमिति।।8।।

नैर्मल्यं मुख्यमेकस्य[7] संविन्नाथस्य सर्वतः।
अंशांशिकातः[8] क्वाप्यन्यद्विमलं तत्तदिच्छया।।9।।

तन्नैर्मल्यं मुख्यामुख्यतया द्विप्रकारमिति दर्शयितुमाह। नैर्मल्यमित्यादि मुख्यमिति सर्वस्य रूपाद्यात्मनो विश्वस्य प्रतिबिम्बसहिष्णुत्वात्।[9] अत उक्तं सर्वत इति संविल्लग्नमेव हि विश्वं संवेद्यते। त एवास्य सर्वतः स्वच्छत्वं तथा क्वापि दर्पणादावंशांशिकात्ते- रूपादिलक्षणमंशमंशमवलम्ब्य[10] अत्यन्तमुख्यं नैर्मल्यम्।।9।।

अनुवाद–स्वप्रकाश (रूप धर्म) को न छोड़ने वाले तथा अपने प्रति अभेद युक्त होते हुए भी भिन्न के प्रदर्शन की जो क्षमता है वही गुरु के द्वारा नैर्मल्य कहा गया है।।8।।

अनुवाद–संविद् के एकमात्र स्वामी परमेश्वर का सर्वत्र नैर्मल्य मुख्य (नैर्मल्य) है और उसकी इच्छा से अंशांशिक रूप में कहीं–कहीं अन्य (अमुख्य) नैर्मल्य।।9।।

1. दर्शनकमतैव, 2. प्रतिबिंबतेपिभावांतरे, 3. प्रतिबिंबार्पकस्य,

4. दर्पणदेशादंडमात्रेपि, 5. प्रतिबिंब, 6. प्रतिबिंबग्रहण सहिष्णुता, 7. मुख्यमेतस्य, 8. प्रतिबिंबसहिष्णुत्वात्, 9. अंशांशिकालः, 10. रूपादिलक्षणमंशंमंशमवलंब्य, 11. अत्यंद

भावानां यत्प्रतीघातिर्वपुर्मायात्मकं हि तत्।
तेषामेवास्तिसद्विद्यामयंत्वप्रतिघातकम्[1]।।10।।

प्रतीघाति प्रतिहंतृत्वादन्यानुप्रवेशासहमित्यर्थः तदिति मायास्वरूपागोपनाकारित्वाद्येयं पारमेश्वरी क्रियाशक्तिस्तदात्मकं सद्विद्यामयं ज्ञानशक्तिस्वभावम्।।10।।

तदेवमुभयाकारमवभासं प्रकाशयन्।
विभातिवरदोबिम्बप्रतिबिम्बदृशाखिले[2]।।11।।

आभासमात्रमेवैतन्न तात्त्विकमित्युक्तमवभासं प्रकाशयति तदेवमिति उभयाकारं प्रतीघात्यप्रतीघातात्मकं। अतएव भेदप्राधान्या द्वैद्यतायाः स्थौल्यात्तत्रास्वच्छत्वमिति प्रतिबिम्बग्रहणसामर्थ्यम्[3] उक्तं च। तस्मादेको महेशानः स्वातन्त्र्योपहितस्थितिः। द्वित्वेव भात्यसौ बिम्बप्रतिबिम्बोदयात्मनेति[4]।।11।।

यस्त्वाहं नेत्रतेजांसि स्वच्छात्प्रतिफलन्त्यलम्[5]।
विपर्यस्यस्वकं वक्त्रंगृह्ण्न्तीतिसपृच्छयते[6]।।12।।

य इत्येकवचनेन सर्वेषां नैयायिकानां नैतन्मतमिति दर्शयति। स्वच्छमद्दर्पणादेः विपर्यस्य परावृत्य।।12।।

अनुवाद–जो भावों का प्रतिहन्ता शरीर है वह मायात्मक होता है। उनका ही शुद्ध विद्यामय शरीर अप्रतिघाती होता है।।10।।

अनुवाद–इस प्रकार दोनों स्वरूप वाले अवभासों को प्रकाशित करते हुए वरदानी परमेश्वर बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से सर्वत्र आभासित हो रहे हैं।।11।।

अनुवाद–जो यह कहता है कि नेत्रों के तेज (ज्योति) स्वच्छ होने के कारण (दर्पण में) प्रतिबिम्बित होते है और (वे ही तेज) लौटकर अपने (दृष्टा के) मुख का ग्रहण करते है उससे पूछा जा रहा है।।12।।

1. त्व प्रतिप्रतिघातकम्, 2. बिंबप्रतिबिंबतयाखिले, 3. प्रतिबिंबग्रहण, 4. बिंबप्रतिबिंबोदयात्मनेति, 5. स्वच्छात्प्रतिफलंत्ययम् 6. पृच्छ्यते

देहादन्यत्र यत्तेजस्तदधिष्ठातुरात्मनः।
तेनैव तेजसाज्ञत्वे कोऽर्थः[1] स्याद्दर्पणेन तु।।13।।
भ्रान्तिरेवैषायद्दर्पणेप्रतिबिम्बयोग[2]इतिनैयायिकमतम्।।
विपर्ययस्तैस्तु तेजोभिर्ग्राहकात्मत्वमागतैः।
रूपं दृश्येत वदने निजे न मकुरान्तरे[3]।।14।।

स्वदेशावस्थितमेव ग्राह्यं ग्राहको गृह्णाति ग्राहकात्मत्वमिति ग्रहीतृसम्बन्धमेव[4] चैतज्ज्ञेयम्। आत्मा–धिष्ठितानामेव ह्येषां ग्राहकत्वमेव व्यवहारः रूपं स्ववदन सम्बन्धि[5]।।14।।

स्वमुखे स्पर्शवच्चेतद्रूपं[6] भायान्ममेत्यलम्।
नत्वस्यस्पृश्यभिन्नस्यवेद्यैकान्तस्वरूपिणः[7]।।15।।

अनुवाद–देह से भिन्न (स्थलों) में जो (चाक्षुष) तेज है उस (तेज) का अधिष्ठाता प्रमाता उसी (अपने ही) तेज से (मुख का) ज्ञान कर लेता है फिर दर्पण का क्या प्रयोजन।।13।।

अनुवाद–ग्राहक बनने वाले प्रत्यावृत्त तेज के द्वारा अपने ही मुख में अपनां रूप दिखायी देने लगता है न कि दर्पण में।।14।।

अनुवाद–अपने मुख में 'यह मेरा रूप है' ऐसी प्रतीति स्पर्श वाली होनी चाहिए न कि स्पृश्य से भिन्न केवल वेद्यस्वरूप (वेद्य) का रूप है (ऐसी प्रतीति होनी चाहिये जैसी कि होती है)।।15।।

1. कोर्थः, 2. प्रतिबिंबयोग, 3. निजेनमुकुरांतरे, 4. ग्रहीत संबंधमेव, 5. स्ववदनसंबंधि, 6. स्पर्शवच्चैतद्रूपं, 7. वेद्यैकांत स्वरूपिणः

रूपसंस्थानमात्रं तत्स्पर्शगन्धरसादिभिः[1]।
न्यग्भूतैरेव तद्युक्तं वस्तुतत्प्रतिबिम्बितम्[2]।।16।।
वस्त्विति न पुनरवस्तु।।
न्यग्भावो ग्राह्यता भावात्तदभावोऽप्रमाणतः[3]।
स चार्थसङ्गमाभावात्सोऽप्यादर्शेऽनवस्थितेः[4]।।17।।

अतएव स्पर्शादीनामनवस्थितेः एतस्यप्रतिबिम्बस्य[5] तदभावे चास्य किं- प्रमाणमित्याह। नहीति असाविति गुरुत्वादिधर्मः प्रतिबिम्बितस्य[6] पर्वतादेर्गुरुत्वादि धर्मसंभवे हि तद्योगाद्दर्पणोऽप्यचाल्यः स्यात् उपाय एवोपायकः रूपं तावत्स्पर्शाव्यभिचारि सर्वत्रैव दृष्टं बिम्बे[7] चैवमिति दर्पणे रूपमेव केवलं किमिति प्रतिसङ्क्रान्तमित्याह[8] तद्दृष्टाविति तस्य रूपसंस्थानमात्रस्य दृष्टावभासने इत्यर्थः। दर्पणे हि पूर्वोक्तयुक्त्या रूपमेव स्वच्छमस्तीति तदवभासन एवास्य साधनत्वं न स्पर्शादेरिति भावः।।16।।

किं नाम स्पर्शादीनां न्यग्भूतमित्याह। न्यग्भाव इति तदभावो ग्राह्यताभावः स च प्रमाणाभावः अनवस्थितेः। स्पर्शादीनाम्।।17।।[9]

अनुवाद-वह (प्रतिबिम्ब) स्पर्श गन्ध रस आदि से शून्य केवल रूपं संस्थान ही है इसलिए यह ठीक है कि वह प्रतिबिम्बित भी वस्तु ही है।।16।।

अनुवाद-(स्पर्श आदि का) तिरोभाव ग्राह्यता के कारण है और (ग्राह्यता) का अभाव इसलिए है कि उस विषय में कोई प्रमाण

नहीं है और वह (प्रमाणभाव) अर्थ का (इन्द्रियों के साथ) सम्बन्ध न होने के कारण और वह भी दर्पण में (स्पर्श आदि की) स्थिति न होने से है।।17।।

1. तत्स्पर्शगंधरसादिभिः, 2. तत्प्रतिबिंबितम्, 3. ग्राह्यता भावात्तदाभावोप्रमाणतः, 4. स चार्थसंगमाभावात्सोप्यादर्शे नवस्थितेः, 5. एतस्यप्रतिबिंबस्य, 6. प्रतिबिंबितस्य, 7. बिंबे, 8. प्रतिसंक्रांतमित्याह,

9. मातृका में पहले 17वें श्लोक की व्याख्या है, तत्पश्चात् 16वें श्लोक की व्याख्या दी हुई है, जो कि क्रमोचित नहीं है।

अत एव गुरुत्वादि धर्मो नैतस्य लक्ष्यते[1]।
नह्यादर्शेसंस्थितोऽसौ[2]तद्दृष्टौ[3]सउपायकः।।18।।
तस्मात्तु नैष भेदेन यद्भाति तत उच्यते।
आधारस्तत्र रूपाया दीपदृक्संविदः क्रमात्।।19।।

ननु यथा दर्पणस्तद्दृष्टावुपायस्तथान्ये दीपात्मेकादय इत्युपायत्वाविशेषेऽप्येष एव कस्मादाधार उच्यते इत्याशङ्क्याह[4] तस्मात्त्विति। तस्मादादर्शादिष प्रतिबिम्बः[5] आधार इति तिलेषु तैलमिव तत्रेति ज्ञप्तौ।।19।।

दीपचक्षुर्विबोधानां काठिन्याभावतः परम्।
सर्वतश्चापिनैर्मल्यान्नविभादर्शवत्पृथक्।।20।।

कठिने हि दर्पणादौ प्रतिसङ्क्रान्तमुखादि[6] आधारस्य स्थैर्यात्पृथक् प्रतिभासते दीपादि तेजः पुनः काठिन्याभावा द्वेगवदिति तत्रास्थैर्यात्तत्तथा न प्रकाशते यथा निर्मलेऽपि जला शयादावस्तिमितत्त्वात्प्रतिसङ्क्रान्तिमपि[7] मुखादि न लक्ष्यते। स तेजापीति भावः। तथाकाशादिवत्सर्वतः स्वच्छत्वात्।।20।।

अनुवाद–इसीलिए इस (प्रतिबिम्ब) का गुरुत्व आदि धर्म भी अनुभूत नहीं होता। वह दर्पण में नहीं रहता। उस (रूप संस्थान) के

दर्शन में वह (दर्पण) उपाय है।।18।।

अनुवाद–जो यह (दर्पण प्रतिबिम्ब से) भिन्न रूप में भासित नहीं होता इस कारण यह आधार कहा जाता है। दीप, नेत्र एवं संविद् उस (आभास) के कृमिक उपाय हैं।।19।।

अनुवाद–दीपक चक्षुरिन्द्रिय और ज्ञान में काठिन्य नहीं है और सब प्रकार से वे निर्मल हैं इसलिए आभास या प्रतिबिम्ब दर्पण के समान पृथक् नहीं (दिखाई देता)।।20।।

1. भासते, 2. संस्थितोसौ, 3. तद्दृष्टो, 4. इत्याशंक्याह, 5. प्रतिबिंब, 6. प्रतिसंक्रांत, 7. प्रतिसंक्रांतिमपि

एतच्च देवदेवेन दर्शितं बोधवृद्धये।
मूढानांवस्तुभवतिततोऽप्यन्यत्र[1]नाप्यलम्।।21।।

प्रतिबिम्बसतत्त्वं[2] कृपालुना देवदेवेन मूढानां वक्ष्यमाणेन प्रकारेण बोधवृद्धये दर्शितमिति सम्बन्धः[3]। वाह्यं खलूत्पन्नं वस्तुदेशाद्देशान्तरं[4] व्रजेन्न चैवमेतदित्याह। ततोऽप्यन्यत्र नेति तत इति दर्पणादेशादन्यत्र वाह्यं रूपादिस्पर्शाद्यव्यभिचरितमेव भवति नैवमेतदित्याह नाप्यलमिति नैतत्पर्याप्तमित्यर्थः अतोऽत्र[5] स्पर्शादिपरिहारेण रूपसंस्थानमात्रस्यैव प्रतिभासः। न शब्दोऽत्र[6] काकाक्षिवद्योज्यः बाह्यं च पर्वतादि सर्वस्यैव प्रतिहन्तृसर्वं[7] चास्य मूर्तत्वात्।।21।।

प्रतीघाति स्वतन्त्रं[8] नो न स्थाय्यस्थायि चापि न।
स्वच्छस्यैवैषकस्यापिमहिमेतिकृपालुना।।22।।

न चैवमेतदित्याह प्रतीघातीति न शब्दोऽत्रापि[9] सम्बन्धनीयः[10] तत्सर्वं पुनरन्यनिरपेक्षमेवास्ते यथा चक्रादिश्रमपरिहारेण घटः इदं पुनरुत्पत्तिनिमित्तं दर्पणाद्युपेक्ष्य स्वातन्त्र्येण[11] न क्वचिदपि सत्तां लभते नहि दर्पणादिपरिहारेण प्रतिबिम्बं[12] क्वचित् दृश्यते तदुक्तं स्वतन्त्रं[13] नो इति। अतएव नैतत्स्वयं

स्थिरमस्थिरं वापीत्याह। न स्थाय्यस्थायि चापि नेति बाह्यं हि वस्तूत्पन्नं सद्बहुकालयोगित्वात् स्थायीत्युच्यते अन्यथा त्वस्थायि एतत्पुनर्दर्पणादेरतिरेकेण सत्तामेव नोपलभते इति कस्य कालयोगेन स्थायित्वमस्थायित्वं वा भवेत् तस्मात् प्रसिद्धं तत्तद्वस्तुजातीयत्वाभावाच्छशविषाणादिवदेतदवस्त्वेवेति नास्य प्रतिभासो न्याय्यः। अथ चास्ति प्रभास इति किमेतदुच्यते इत्याह स्वच्छस्यैवैषकस्यापि महिमेति स्वच्छस्य दर्पणादेरेवैष प्रभावो यद्वस्तुविलक्षणमाभासनमात्रसारं प्रतिबिम्बं[14] नामेति तेन भगवता यथा दर्पणादावाभासमात्रसारा एव भावा अभावा सन्ते तथा संवित्तावपीति न बह्रीरूपत्वे नैषां सत्वमस्तीति बोधं वर्धयितुं वा ह्यर्थाभिनिवेशिनामेतदुपदिष्टम्।।22।।

1. ततोप्यन्यत्र, 2. प्रतिबिंब, 3. संबंध, 4. वस्तुदेशाद्देशांतर, 5. अतोत्र, 6. शद्वोत्र, 7. प्रतिहंतृसर्व, 8. स्वतंत्रं, 9. शद्वोत्रापि, 10. संबंधनीयः, 11. स्वातंत्र्येण, 12. प्रतिबिंब, 13. स्वतंत्रं, 14. प्रतिबिंब

न देशो नो रूपं न च समययोगो न परिमा।
न चान्योन्याङ्गो[1] न च तदपहानिर्न घनत ।[2]।।
न चावस्तुत्वं स्यान्न[3] च किमपि सारं निजमिति।
ध्रुवंमोहःशाम्येदितिनिरदिशद्दर्पणविधिः[4]।।23।।

इति बिम्बप्रतिबिम्बवादः[5] समाप्तः।।

अतः सर्वमेवैतदाभासमात्रसारमेवेति न बाह्यार्थेऽभि निविष्टव्यं येन द्वैतमोहः साम्येदत आह। न देश इति प्रतिबिम्बं[6] तावत् दर्पणातिरेकेण स्वतन्त्रतया[7] पृथक् सत्तां नोपलभते इत्युपपादितं तच्च नास्त्यस्य दर्पणात् पृथक् देश इत्युक्तं। न देश इति। एवं चास्य घटवत्काठिन्यलक्षणामूर्तिरपि नास्तीत्यर्थः। अन्यथा हि दर्पणादस्य पृथक् देशः स्यात्।

एकस्यैव नभो देशस्य मूर्तेन दर्पणेनाक्रान्तस्य[8] मूर्तान्तरेण ाक्रमितुमशक्यत्वात्। मूर्तानां समान देशत्वविरोधात्। अतएव चास्य न रूपं रूपाख्यगुणयोग इत्यर्थः। स हि मूर्त एव भवतीति भावः। अतएव चास्य न कालेन सम्बन्धः[9] स हि किञ्चित्[10] पूर्वापरभाविनमपेक्ष्य पृथक् लब्धसत्ता कस्य स्यात्। अस्य पुनर्दर्पणात् पृथक् सत्तैव नास्तीत्युक्तं बहुशः। अत एव चास्य न परिमाणं सत एव तद्योगोपपत्तेः अन्यथा हि परिमिते दर्पणदेशे महाकारं पर्वतादिकथं प्रतिसङ्क्रान्तं[11] भवेत्। नापि दर्पणान्तरे नैकेषामर्थानां सह प्रतिभासेऽपि परस्परं नैवित्य न संश्लेष इत्याह। न चान्योन्यासङ्गात[12] इति। ननु नगरप्रतिभासादौ यद्यनेकेषां भिन्नदेशानामेकस्मिन्नेव परिमिते दर्पणदेशे प्रतिभासः तदेषामेकदेशान्यथानुपपत्या परस्परं सम्मेलने[13] नैकपिण्डाभावे[14] नैवासौ न्यायः। न चैवं तर्हि तत्र नगरप्रतिभासो न भवेदित्याह। न च तदपहानिरिति सर्वेषामेवार्थानां परस्परवैविक्त्ये नैव प्रतिभासात्। न च भातमभातं भवतीत्युक्तं बहुशः अत एव चास्या नावस्तुत्वमित्याह न च वस्तुहानिरिति सर्वेषामेवार्थानां

1. चान्योन्यासंगो, 2. घटना, 3. स्या न, 4. निरदिशद् दर्पणबिधिम्, 5. बिंबप्रतिबिंबवादः, 6. प्रतिबिंब, 7. स्वतंत्रया, 8. दर्पणेनाक्रांतस्य, 9 संबंधः, 10. किंचित्, 11. संक्रांत, 12. संमेलने, 13. चान्योन्यासंगत, 14. नैकपिंडाभावे

प्रतिभासादितिभावः एवमपि वस्तुत्वोपपादकमल्पमपि निजं तथ्यं रूपं नास्तीत्याह न च किमपि सारं निजमिति इत्येवमाभासमात्रसारं प्रतिबिम्बसतत्त्वं[1] बाह्यार्थवादिनोऽपि निश्चितमेव द्वैतप्रथात्मकं सत्र्कुचितं[2] ज्ञानं शाम्यतामित्येतदर्थं दर्पणविधिं कुड्यादिवैलक्षण्येन प्रतिबिम्बसहिष्णुवस्तुप्रकारं[3]

निरदिशन्निर्दिष्टवान् एवं च सत्ययमर्थः प्रदर्शितो भवति यद्विश्वमिदं संविदि दर्पणप्रतिबिम्बन्यायेनावस्थितं[4] न तु तदतिरिक्ततया वहीरूपत्वेन वस्तुसदिति न तत्राभिनिवेष्टव्यम्।

इति श्रीतन्त्रालोके[5] बिम्बप्रतिबिम्बवादः[6] सम्पूर्णः।।23।।

अनुवाद–देवाधिदेव ने मूढों के बोध की वृद्धि के लिए इस (बिम्बप्रतिबिम्ब भाव) को दिखाया। (यह प्रतिबिम्ब भी) वस्तु है। (यह दर्पण देश से) अन्य स्थल में नहीं रहता (इतना ही) पर्याप्त नहीं है।।21।।

अनुवाद–यह (प्रतिबिम्ब) प्रतिघाती नहीं है। स्वतन्त्र नहीं, स्थायी और अस्थायी भी नहीं है। यह किसी स्वच्छ (तत्त्व) की महिमा है-ऐसा कृपालु (देवाधिदेव) के द्वारा (कहा गया)।।22।।

अनुवाद–(प्रतिबिम्ब का दर्पण से पृथक्) कोई देश नहीं, कोई रूप नहीं, समय योग नहीं, परिणाम नहीं, अन्योन्य सम्बन्ध भी नहीं, न उसकी हानि है न सघनता। वह अवस्तु भी नहीं और उसका अपना कोई स्थायी तत्त्व नहीं। मोह भङ्ग हो जाय दर्पण विधि यह बताती है।।23।।

इस प्रकार तन्त्रालोक में वर्णित बिम्बप्रतिबिम्बवाद समाप्त हुआ।

1. प्रतिबिंब, 2. संकुचितं, 3. प्रतिबिंबसहिष्णुवस्तुप्रकारं, 4. दर्पणप्रतिबिंबन्यायेनावस्थितम्, 5. तंत्रालोके, 6. बिंबप्रतिबिंबवादः

श्लोकानुक्रमणी

श्लोक	श्लोक सङ्ख्या	पृष्ठ सङ्ख्या
अतएव गुरुत्वादि	18	–
अतोऽसौ परमेशान:03		–
एतच्च देव देवेन	21	–
तदेवमुभयाकारम्	11	–
तस्मात्तु नैष भेदेन	19	–
दीपचक्षुर्विबोधानां	20	–
देहादन्यत्र यत्तेज:	13	–
न देशो नो रूपं न च	23	–
नह्यस्पर्शोऽस्य विमलो	07	–
निर्मले मकुरे यद्वद्	14	–
नैर्मल्यं मुख्यमेकस्य	09	–
न्यग्भावोग्राह्यता भावात्	17	–
प्रकाशमात्रं यत्प्रोक्तं	01	–
प्रच्छन्नरागिनी कान्त	06	–
प्रतीघाति स्वतन्त्रं नो	22	–
भावानां यत्प्रतीघाति	10	–
य: प्रकाश: स विश्वस्य	02	–
यस्त्वाहं नेत्रतेजांसि	12	–
रूपसंस्थानमात्रं तत्	16	–
विपर्ययस्तैस्तु तेजोभि:	14	–
सदृशं भाति नयन.	05	–
स्वमुखे स्पर्शवच्चेतद्रूपं	15	–
स्वस्मिन्नभेदाद्भिन्नस्य	08	

संदर्भ

1. तन्त्रालोक–37/38–39
2. तन्त्रालोक–1/12
3. तन्त्रालोक, प्रथमाह्निकम् विवेक टीका, पृ0 11
4. तन्त्रालोक, प्रथमाह्निकम् विवेक टीका, पृ0 19
5. काश्मीर शैवदर्शन और कामायनी–पृ0 32
6. तन्त्रालोक–12/25
7. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी भूमिका, पृष्ठ सङ्ख्या–3
8. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी क्रियाधिकार चतुर्थ विमर्श श्लो. 15 पृ. सङ्ख्या 407
9. तन्त्रालोक–37/52
10. गुरुनाथ परामर्श–5/6
11. तन्त्रालोक–1/10–11
12. तन्त्रालोक–37/61
13. तन्त्रालोक–1/13
14. तन्त्रालोक, प्रथममाह्निकम् विवेकटीका पृ0 27
15. तन्त्रालोक–37/60
16. तन्त्रालोक, प्रथममाह्निकम् विवेकटीका पृ0 192
17. तन्त्रालोक–9/260
18. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, ज्ञानाधिकार, उपोद्घात श्लोक सङ्ख्या–4
19. तन्त्रालोक–37/60
20. तन्त्रालोक–37/58
21. तन्त्रालोक–37/62
22. तन्त्रालोक–37/62
23. तन्त्रालोक–13/335
24. संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास, एकादश खण्ड, पृ0 236
25. तन्त्रालोक–1/20

26. तन्त्रालोक-1/15
27. संस्कृतसाहित्य का वृहद् इतिहास एकादश खण्ड, पृ0 236
28. संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास एकादश खण्ड, पृष्ठ सङ्ख्या-237
29. परात्रिंशिका, पृष्ठ सङ्ख्या-281
30. परात्रिंशिका पृष्ठ सङ्ख्या-281
31. तन्त्रसार-1/2
32. तन्त्रसार, प्रथममाह्निकम्, पृ0 18
33. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन पृ0 6
34. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन पृ0 6
35. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन, पृ0 17
36. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन, पृ0 18
37. सर्वदर्शनसङ्ग्रहः नकुलीशपाशुपतदर्शनम्, पृष्ठ सङ्ख्या-153
38. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन, पृ0 68
39. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन, पृ0 25
40. श्रीसिद्धान्तशिखामणी, द्वितीय परिच्छेद, श्लोक सङ्ख्या-12-13
41. तदेव-दशम परिच्छेद, श्लोक सङ्ख्या-63-64
42. श्रीसिद्धान्तशिखामणी, दशम परिच्छेद, श्लोक सङ्ख्या-66
43. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन, पृ0 26
44. वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्डम्, श्लोक सङ्ख्या-133
45. प्रत्यभिज्ञाहृदयम् सूत्र सङ्ख्या-2
46. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-3/2/1
47. शिवदृष्टि प्रथममाह्निकम् श्लोक सङ्ख्या-37-38
48. शिवदृष्टि तृतीयमाह्निकम् श्लोक सङ्ख्या-2-3
49. ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी-4/1/17
50. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन, पृष्ठ संङ्ख्या 32
51. तन्त्रालोक एकोनत्रिंशमाह्निकम्-श्लोक सङ्ख्या-4
52. कुलार्णवतन्त्रम्, द्वितीयोल्लास श्लोक सङ्ख्या-24
53. संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास एकादश खण्ड पृ0 220
54. शिवदृष्टि तृतीयमाह्निकम् श्लोक सङ्ख्या-4
55. संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास एकादश खण्ड पृष्ठ सङ्ख्या 230
56. त्रिकदर्शन का समीक्षात्मक तत्त्वमीमांसीय अध्ययन, पृष्ठ सङ्ख्या 3
57. संस्कृत साहित्य का वृहद् इतिहास एकादश खण्ड, पृष्ठ सङ्ख्या 221

डॉ. सरोज कुमार शुक्ल का जन्म 4 फरवरी 1980 ई. को पिता श्री बचान प्रसाद शुक्ल के घर ग्राम पालूडीह, जनपद–सीतापुर उ.प्र. में हुआ। आपने लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. (संस्कृत) तथा पीएच–डी. की उपाधि प्राप्त की एवं यूजीसी की नेट् परीक्षा भी उत्तीर्ण किया।

शोध-कार्य : विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लगभग 9 शोध–पत्र और लेख प्रकाशित। लगभग 17 शोध–संगोष्ठियों (सेमिनारों) में सहभागिता तथा पत्र–वाचन। यूजीसी द्वारा संचालित मेजर रिसर्च प्रोजेक्ट में 'प्रोजेक्ट फेलो' के पद पर तीन वर्ष तक शोध–कार्य तथा उत्तर प्रदेश सरकार की समुत्कर्ष केन्द्र योजना के अन्तर्गत रिसर्च असिस्टेंट के पद पर शोध–कार्य।

पुरस्कार : डब्ल्यू.ए.वी.एस. के द्वारा श्रेष्ठ शोध–पत्र लेखन एवं वाचन के लिए 'श्रीमती चन्द्रावती शर्मा मेमोरियल' अवार्ड 2013 प्राप्त।

वर्तमान में आप अतिथि प्रवक्ता (विषय–विशेषज्ञ), संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ कार्यरत।

₹ 300

ISBN : 978-93-81615-66-9

9 789381 615669

प्रगतिशील प्रकाशन

एन-3/25, प्रथम तल, मोहन गार्डन, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
दूरभाष : 011-25358642 ई-मेल : satyampub_2006@yahoo